मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 147 ● वर्ष 15, अंक 12 ● मार्च 2026 ● दस रुपये ● (विशेष अंक) 24 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

पूँजीवादी व्यवस्था और युवा आबादी को अनियमित व अनौपचारिक क्षेत्र में धकेले जाने की बाध्यता 9
क्रान्तिकारी मज़दूर शिक्षणमाला मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त 19
मोदी सरकार का “सरेण्डर” और भारतीय शासक वर्ग का चरित्र 18

ईरान पर अमेरिका-इज़रायल द्वारा थोपा गया साम्राज्यवादी युद्ध अमेरिकी साम्राज्यवाद और इज़रायली सेटलर उपनिवेशवाद की शर्मनाक हार के साथ ख़त्म होगा

सम्पादकीय अग्रलेख

ईरान पर साम्राज्यवादी अमेरिका और पश्चिम एशिया में उसके लठैत इज़रायल ने क़रीब चार हफ़्ते पहले हमला कर दिया। ग़ौरतलब है कि यह हमला ईरान को आणविक हथियार बनाने से रोकने के नाम पर किया गया था और हमले का अन्तिम लक्ष्य ईरान में सत्ता-परिवर्तन करने को बताया गया था। लेकिन सभी जानते थे कि ये कारण बस दुनिया को बताने के लिए गढ़े गये हैं। वास्तव में, जिस समय हमला किया गया, उस दौरान ईरान और अमेरिका के बीच ओमान की मध्यस्थता में समझौता-वार्ता जारी थी ताकि आणविक हथियारों के मसले पर कोई आम सहमति बनायी जा सके। ओमान ने हमले पर ताज्जुब जताते हुए बताया कि वार्ता में तरक्की हो रही थी और जल्द ही एक आम सहमति पर पहुँचने के आसार थे। ऐसे में अमेरिका ने हमला क्यों किया?

इसकी तात्कालिक वजह यह थी कि अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रम्प, जिसकी फ़ितरत एक सड़कछाप गुण्डे और शोहदे जैसी है, एप्स्टीन फ़ाइल्स से पैदा हुए राजनीतिक संकट के भँवर में फँसा हुआ था। इस मसले में ट्रम्प के ऊपर बच्चियों के बलात्कार का आरोप है और उसके द्वारा किये गये कुकृत्यों के वीडियो प्रमाण भी मौजूद होने की गुंजाइश है। ट्रम्प प्रशासन लगातार इन प्रमाणों को मिटाने के प्रयासों में लगा हुआ है, हालाँकि इसमें अभी उसे पूरी सफलता नहीं मिल पा रही है। लेकिन चूँकि जेफ़री एप्स्टीन ख़ुद इज़रायल का एक एजेण्ट और दल्ला था, इसलिए ऐसे प्रमाण इज़रायल के पास होने की पूरी सम्भावना है। इज़रायल पिछले 45 वर्षों से अमेरिका को ईरान पर हमले के लिए उकसाता रहा है। लेकिन अभी तक किसी अमेरिकी राष्ट्रपति ने यह हिमाक़त करने की कोशिश नहीं की थी। लेकिन इस बार एक ऐसा अमेरिकी राष्ट्रपति इज़रायल को मिला जिसकी टुच्ची और आपराधिक हरक़तों की वजह से उसकी बाँह मरोड़कर अपना काम निकलवाना इज़रायल के लिए अपेक्षाकृत आसान था। वरना कोई वजह नहीं थी कि अमेरिका ईरान पर हमला करता।

अगर हम अमेरिकी पूँजीपति वर्ग और उसके शासक ब्लॉक को ही देखें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि ईरान पर हमले को लेकर उसमें कोई आम सहमति नहीं थी। उल्टे उसका बड़ा हिस्सा इस हमले के ख़िलाफ़ था। ज़ाहिरा तौर पर, युद्ध शुरू हो जाने के बाद ट्रम्प की युद्ध शक्तियों को सीमित या रद्द करने के लिए वोट करना शासक ब्लॉक के लिए सम्भव नहीं था, क्योंकि वह अमेरिकी साम्राज्यवाद के लिए शर्मनाक स्थिति पैदा करता और उसके पहले से जारी राजनीतिक संकट को भी और ज़्यादा बढ़ाता। लेकिन यह स्पष्ट है कि न तो अमेरिकी पूँजीपति वर्ग फ़िलहाल यह हमला चाहता था, न ही सत्ताधारी रिपब्लिकन पार्टी में इसे लेकर कोई आम सहमति थी और न ही अमेरिकी पूँजीवादी विपक्ष इसे लेकर सरकार को समर्थन देने वाला था। अमेरिकी जनता का तो भारी बहुलांश ऐसा कोई युद्ध नहीं चाहता था और ट्रम्प के चुनाव जीतने की एक वजह ही उसका यह वायदा था कि वह अमेरिका को पश्चिम एशिया या दुनिया में कहीं भी ऐसे युद्ध में नहीं उलझायेगा। *लेकिन इसके बावजूद अचानक यह हमला किया जाना स्पष्ट दिखलाता है कि यह राजनीतिक दूरदृष्टि से रिक्त ट्रम्प और उसके इर्द-गिर्द इकट्ठा नस्लवादी व*

(पेज 13 पर जारी)

नरेन्द्र मोदी की इज़रायल यात्रा

फ़ासीवादियों और ज़ायनवादियों की प्रगाढ़ होती एकता!

● प्रियम्वदा

26 फ़रवरी को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी एक बार फिर इज़रायल यात्रा पर गये। इससे पहले भी वह 2017 में इस सेटलर कोलोनियल राज्य की यात्रा पर जाने वाले भारत के पहले प्रधानमंत्री थे। अपने कार्यकाल में यह उनकी दूसरी यात्रा थी। यूँ तो 2014 के बाद से ही मोदी सरकार ने इज़रायल के साथ अपनी नज़दीकियाँ बढ़ायी हैं लेकिन प्रधानमंत्री की इस हालिया यात्रा को लेकर कई गम्भीर सवाल उठ रहे हैं। साथ ही, नरेन्द्र मोदी की इस यात्रा ने एक बार फिर फ़ासीवादी और ज़ायनवादी बर्बरों की घृणित एकता और वैचारिक साझेदारी को दुनिया के सामने उद्घाटित किया है।

पिछले तकरीबन ढाई सालों से इज़रायल फ़िलिस्तीनी आवाम का जनसंहार कर रहा है, उनकी जगह-ज़मीन पर कब्ज़ा करने के लिए बच्चों-बूढ़ों, बेगुनाह नागरिकों का क़त्लेआम कर रहा है, 1 लाख से अधिक फ़िलिस्तीनीयों को मौत के घाट उतार चुका है और पूरे ग़ज़ा को खण्डहर में तब्दील कर चुका है। इज़रायल के इस अमानवीय कृत्य के ख़िलाफ़ दुनियाभर के इंसाफ़पसन्द लोग सड़कों पर हैं, अलग-अलग देशों की सरकारें अपने देशों में जनदबाव और फ़िलिस्तीन के समर्थन में जुझारू आन्दोलनों के चलते इज़रायल की इस बर्बरता को रोकने के लिये उसपर दबाव बना रही हैं, उसके साथ अपने तमाम व्यापारिक, कूटनीतिक सम्बन्धों को तोड़ रही हैं। अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय ने इज़रायली प्रधानमंत्री नेतन्याहू को युद्ध अपराधी घोषित करके उसकी गिरफ़्तारी के लिए वारण्ट जारी किया हुआ है। एक ऐसे वक़्त में फ़ासीवादी मोदी सरकार हत्यारे इज़रायली राज्य के साथ अपनी घनिष्ठता बढ़ा रही है। भारत उन देशों की सूची में शुमार रहा है जिसने फ़िलिस्तीन पर इज़रायली औपनिवेशिक क़ब्ज़े का शुरू से विरोध किया था और 1948 में इज़रायली सेटलर कोलोनियल परियोजना के बनने के ख़िलाफ़ खड़ा हुआ था। हालाँकि पिछले कुछ समय से फ़िलिस्तीनी मुक्ति-संघर्ष के साथ भारत की प्रतिबद्धता महज़ कागज़ी और औपचारिक-आधिकारिक गलियारों तक ही सीमित रह गयी थी लेकिन नरेंद्र मोदी ने अपनी इज़रायल यात्रा के दौरान इस औपचारिक प्रतिबद्धता को भी ख़त्म कर दिया है और खुलेआम ज़ायनवादियों के साथ दोस्ती का ऐलान करके भारत की जनता और फ़िलिस्तीनी क़ौम के साथ ऐतिहासिक विश्वासघात को अंजाम दिया है।

दो दिवसीय यात्रा के दौरान झूठ, फ़रेब और बेशर्मी का प्रदर्शन

इज़रायल पहुँचकर नरेन्द्र मोदी ने बेशर्मी की पराकाष्ठा करते हुए काफी बयानबाज़ी की। इज़रायली संसद

(पेज 10 पर जारी)

पानीपत रिफ़ाइनरी के असंगठित मज़दूरों का संघर्ष

(पेज 22 से आगे)

लेकिन मारुति में काम कर चुके पुराने ठेका श्रमिकों को जल्द ही समझ में आ गया कि उनका इस्तेमाल करने के लिए यह सब कारगुज़ारी की जा रही है तो वे इनके झाँसे में नहीं आये। पानीपत रिफ़ाइनरी के अपने मज़दूर साथियों को हम यही कहेंगे कि इस तरह की विजातीय और अवसरवादी प्रवृत्तियों से उचित दूरी बनाकर ही रहना चाहिए।

पानीपत रिफ़ाइनरी के मज़दूरों ने हड़ताल के दौरान जो कुछ भी हासिल किया है उसकी सुरक्षा एक ही सूरत में की जा सकती है और वह है श्रमिकों के बीच से बनी उनकी अपनी ईमानदार जुझारू यूनियन का निर्माण, जिसमें सभी श्रमिक साथी मज़बूती के साथ संगठित हों। वेतन वृद्धि जैसी जायज़ माँग, जिसे श्रमिक मनवा नहीं पाये, उसे भी मज़बूत यूनियन और संगठन शक्ति के द्वारा ही हासिल किया जा सकता है। केन्द्र सरकार द्वारा पानीपत रिफ़ाइनरी के वेतन ग्रेड को 'बी' से भी घटाकर 'सी' कर दिया गया है जोकि मज़दूरों के साथ भद्दा मज़ाक है। आज महँगाई के समय में जब हर चीज़ के दाम आसमान छू रहे हैं तब रिफ़ाइनरी जैसे जोखिमभरे व कठिन काम में लगे श्रमिकों को 'सी' ग्रेड का वेतन दिया जाना कहीं से भी जायज़ नहीं है। हमें हमारी मेहनत का पूरा फल मिलना चाहिए जोकि असल में मेहनतकशों के राज में ही सम्भव है। किन्तु एक मानवीय जीवन जीने के लिए काम के घण्टे छह और 26 दिन के हिसाब से न्यूनतम वेतन कम से कम 30 हज़ार रुपये तय किया जाना चाहिए। अकुशल श्रमिक को 30 हज़ार के वेतन को मानक मानकर अन्य श्रमिकों के वेतन में भी इसी अनुसार बढ़ोत्तरी की जानी चाहिए। एक गरिमापूर्ण जीवन जीने का अधिकार हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। इस अधिकार को हासिल करने के लिए स्वयं को एक मज़बूत यूनियन के रूप में संगठित करना एक बुनियादी पूर्वशर्त है। तमाम श्रम अधिकारों के साथ-साथ यूनियन बनाने का अधिकार भी ऐसा अधिकार है जिसे हासिल करने के लिए मज़दूर वर्ग के हमारे पुरखों ने शानदार कुर्बानियाँ दी हैं।

'मज़दूर बिगुल' डाक से न पहुँचने की शिकायतों के बारे में

प्रिय पाठको,

हमें 'मज़दूर बिगुल' के कई नियमित पाठकों की ओर से अक्सर ऐसी शिकायतें मिल रही हैं कि अख़बार की प्रति उन्हें मिल ही नहीं रही है या अनियमित मिल रही है। ऐसे साथियों से आग्रह है कि वे एक बार अपने निकटतम डाकघर में लिखित शिकायत दर्ज करायें और उसकी प्रति हमें भी ईमेल या व्हाट्सएप पर भेज दें, ताकि हम जिस डाकघर से अख़बार पोस्ट करते हैं, वहाँ भी शिकायत दर्ज करा सकें।

पिछले काफ़ी समय के अनुभव और डाक विभाग के ही अनेक कर्मचारियों व अधिकारियों से बात करने के आधार पर यह स्पष्ट है कि यह सरकार जानबूझकर डाक विभाग की जनसेवाओं को नष्ट कर रही है ताकि इसके भी बड़े हिस्से को निजीकरण की ओर धकेला जा सके। एक तरफ़ सेवाओं के दाम बढ़ाये जा रहे हैं, दूसरी ओर नयी भर्तियाँ नहीं करने, ठेकाकरण बढ़ाने और डाकिये सहित तमाम कर्मचारियों पर काम का बोझ बढ़ाते जाने से भी सेवाएँ प्रभावित हो रही हैं।

'बिगुल' जैसे जनपक्षधर पत्र-पत्रिकाओं और हमारे पाठकों के लिए इससे कठिनाइयाँ बढ़ गयी हैं लेकिन हम पूरी कोशिश कर रहे हैं कि आप तक अख़बार पहुँचता रहे। इसमें हमें आपका भी सहयोग चाहिए।

साधारण डाक की अव्यवस्था और अनिश्चितता से बचने के लिए 'मज़दूर बिगुल' को आप रजिस्टर्ड डाक (ज्ञान पोस्ट) से मँगवा सकते हैं। इसके लिए आपको प्रति अंक 25/- के हिसाब एक साल के 300/- अतिरिक्त भेजने होंगे।

रजिस्टर्ड डाक के ख़र्च सहित नयी वार्षिक सदस्यता का शुल्क 425 रुपये होगा।

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – **लेनिन**

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

प्रिय पाठको,

अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया इसकी सदस्यता लें और अपने दोस्तों को भी दिलवाएँ। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं। या फिर QR कोड स्कैन करके मोबाइल से भुगतान कर सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :
मज़दूर बिगुल,
द्वारा जनचेतना,
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787,
IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

QR कोड व UPI

UPI: bigulakhbar@okicici

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :
फ़ोन : 0522-4108495, 8853476339 (व्हॉट्सऐप)
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट

www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमश: उपलब्ध कराये जा रहे हैं।

मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर नि:शुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिए भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul

अपने कारख़ाने, वर्कशॉप, दफ़्तर या बस्ती की समस्याओं के बारे में, अपने काम के हालात और जीवन की स्थितियों के बारे में हमें लिखकर भेजें। आप व्हॉट्सएप पर बोलकर भी हमें अपना मैसेज भेज सकते हैं। नम्बर है : 8853476339

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016 फ़ोन: 8853476339
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 9289498250
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 10 रुपये वार्षिक – 125 रुपये (साधारण डाक से) – 425 रुपये (रजिस्टर्ड डाक से) आजीवन सदस्यता – 3000/- रुपये

संकेई प्रगति इण्डिया कम्पनी (हरियाणा) के हड़ताली मज़दूरों को मिली आंशिक जीत!

मज़दूरों की एकजुटता के आगे झुका कम्पनी प्रबन्धन!

● बिगुल संवाददाता

संकेई प्रगति इण्डिया कम्पनी (बिलासपुर, गुड़गाँव) में जारी मज़दूरों की हड़ताल 10 मार्च की रात को यूनियन और प्रबन्धन के बीच हुए समझौते के बाद समाप्त हो गयी। मज़दूरों की एकजुटता के दबाव में संकेई प्रबन्धन को मज़दूरों की कई माँगों को स्वीकार करना पड़ा। ऑटोमोबाइल उद्योग अस्थायी मज़दूर यूनियन (AICWU) के साथी भी हड़ताल के दौरान संकेई के मज़दूरों के साथ शामिल रहे और अन्य यूनियनों के साथ मिलकर हड़ताल को संचालित किया। हड़ताल के दौरान हीरो, सुज़ुकी, शिवम, सत्यम, एआईआईपीएल, बजाज, होण्डा, असायी से लेकर कई कम्पनियों की यूनियनों के साथी मौजूद रहे।

संकेई कम्पनी के मज़दूर 9 मार्च से हड़ताल पर थे। मज़दूरों की प्रमुख माँग थी कि वेतन में बढ़ोत्तरी की जाये, निकाले गये यूनियन सदस्य की बहाली की जाये तथा पुराने कैज़ुअल मज़दूरों को स्थायी किया जाये। पूरे दिन यूनियन और प्रबन्धन की कई बार वार्ताएँ हुईं, जिसमें आख़िरकार प्रबन्धन को मज़दूरों की माँगों को स्वीकार करना पड़ा। समझौते में तय हुआ कि आगामी 3 वर्षों तक स्थायी मज़दूरों के वेतन में वार्षिक 10 हज़ार रुपये व पिछले 6 महीने से कार्यरत कैज़ुअल मज़दूरों के वेतन में वार्षिक 500 रुपये की बढ़ोत्तरी की जायेगी। दूसरा, प्रबन्धन व यूनियन की वार्ता के माध्यम से हर वर्ष कुछ पुराने कैज़ुअल मज़दूरों को स्थायी किया जायेगा। तीसरा, निकाले गये यूनियन सदस्य को लेकर कम्पनी प्रबन्धन निष्पक्षता से जाँच करेगा। चौथा, कम्पनी में अच्छा भोजन, साफ़ शौचालय जैसी बुनियादी सुविधाएँ मुहैया करायी जायेंगी। पाँचवा, कम्पनी में कार्यरत महिला मज़दूरों के लिए महिला गार्ड की भर्ती की जायेगी।

संकेई प्रगति इण्डिया लिमिटेड जापान की कम्पनी है। इनके द्वारा मारुति, सुज़ुकी, होण्डा आदि कम्पनियों की गाड़ियों के ब्राण्ड लोगो बनाये जाते हैं। यहाँ 44 स्थायी व 408 कैज़ुअल मज़दूर काम करते हैं, जिसमें 50-60 महिलाएँ भी हैं। पिछले 10-15 वर्षों से कार्यरत स्थायी मज़दूरों का वेतन महज़ 18 हज़ार ही है। लम्बे समय से मज़दूरों के वेतन में बढ़ोत्तरी नहीं की गयी थी। वहीं कैज़ुअल मज़दूरों को भी 9-12 हज़ार तक ही वेतन मिलता है और वह भी समय पर नहीं दिया जाता। इसलिए कैज़ुअल मज़दूरों को मजबूरन अतिरिक्त 8 घण्टे ओवरटाइम यानी लागातार 16 घण्टे काम करना पड़ता है और तेज़ी के समय कम्पनी द्वारा भी जबरन ओवरटाइम के लिए रोका जाता है। साथ ही कम्पनी द्वारा प्रोडक्शन को बढ़ाने के लिए भी दबाव बनाया जाता है और एक मज़दूर से कई मशीनों पर काम लिया जाता है। एक दिन भी छुट्टी करने पर काम से निकाल दिया जाता है। महिला मज़दूरों के शौचालय तक साफ़ नहीं किये जाते। कम्पनी में बेहतर भोजन, दवाई जैसी बुनियादी सुविधाएँ भी उपलब्ध नहीं हैं। इसकी शिक़ायतें मज़दूरों ने कई बार मैनेजमेंट से की, पर प्रबन्धन ने इसपर कोई ध्यान नहीं दिया। प्रबन्धन के इस अड़ियल रवैये से मज़दूर लम्बे समय से परेशान थे। 9 मार्च की दोपहर में मज़दूरों को बेहद घटिया खाना लंच में दिया गया। तब प्रबन्धन के ख़िलाफ़ मज़दूरों का गुस्सा फूट पड़ा और काम ठप्प कर, कम्पनी के अन्दर ही मज़दूर हड़ताल पर बैठ गये। हड़ताल के दौरान तैयार माल की गाड़ियों से लेकर मैनेजमेंट के लोगों तक को कम्पनी से बाहर नहीं जाने दिया गया। प्रबन्धन ने धमकी भरा नोटिस लगाकर व पुलिस की मदद लेकर मज़दूरों को ड़राने की कोशिश की, पर अन्त तक मज़दूर अपनी माँगों को लेकर डटे रहे।

संकेई के मज़दूरों द्वारा हासिल की गयी इस छोटी-सी जीत ने यह दिखा दिया है कि अगर कम्पनी में स्थायी व अस्थायी मज़दूरों की एकता मज़बूत हो तो प्रबन्धन को एक हद तक झुकाया जा सकता है। आगे भी संकेई के मज़दूर साथियों को स्थायी-अस्थायी मज़दूरों की एकता को बरक़रार रखना होगा, तभी हड़ताल में हुए समझौते को लागू करवाया जा सकता है।

संकेई के मज़दूरों की हड़ताल को अन्य कम्पनियों की यूनियनों की भागीदारी के बिना जीतना बेहद मुश्किल होता। तमाम यूनियनों के साथियों ने हड़ताल को सफल बनाने में भी पूरी मदद की। यह दर्शाता है कि आज के दौर में मज़दूरों के हर संघर्ष को तभी जीता जा सकता है, जब अपनी एकता को सिर्फ़ कम्पनी तक सीमित न रखते हुए, उसे व्यापक बनाया जाये। हम उम्मीद करते हैं कि आगे भी सभी कम्पनियों की यूनियन के साथी हर संघर्ष में भागीदारी करेंगे और अपनी कम्पनियों में भी स्थायी-अस्थायी मज़दूरों की एकता को मज़बूत बनायेंगे ताकि ज़रूरत पड़ने पर हर कम्पनी के मज़दूर एक साथ आ सकें। इसके साथ ही आज के वक़्त की सबसे बड़ी ज़रूरत आटोमोबाइल उद्योग की एक ताक़तवर इलाक़ाई-सेक्टरगत यूनियन का निर्माण करना भी है जिसके ज़रिये अस्थायी व स्थायी दोनों तरह के मज़दूरों की फ़ौलादी एकता वास्तविकता में क़ायम की जा सके। अतीत के संघर्षों से अगर हम कोई सबक़ ले सकते हैं तो वह यही है कि ऐसी यूनियन के बग़ैर आज पूँजी व राज्यसत्ता की ताक़त को हरा पाना बेहद मुश्किल है। स्पष्ट है कि ऐसी सेक्टरगत यूनियन फ़ैक्ट्री-आधारित यूनियनों की जगह नहीं लेगी बल्कि फ़ैक्ट्री-आधारित संघर्षों को भी संवेग प्रदान करने का काम करेगी। ऑटोमोबाइल उद्योग अस्थायी मज़दूर यूनियन (AICWU) इसी कार्यभार को पूरा करने के लिए प्रतिबद्ध है। आज के दौर में इस काम को हम जितनी जल्दी पूरा कर पायेंगे, उतनी जल्दी हम अपने संघर्षों की जीत को सुनिश्चित कर पायेंगे।

स्त्री मज़दूर दिवस और स्त्री मज़दूरों के हालात

हरियाणा में मज़दूरों की 'हत्या' के लिए अवैध कारख़ानेदार तथा श्रम क़ानूनों की धज्जियाँ उड़ाने वाली भाजपा सरकार ज़िम्मेदार!

● अजय

8 मार्च को पूरी दुनिया में अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस मनाया जाता है। सरकारें बड़े-बड़े दावे करती हैं—स्त्रियों की आज़ादी, बराबरी और सम्मान के। लेकिन हरियाणा के जींद ज़िले के सफ़ीदों में घटी एक दर्दनाक घटना इन दावों की सच्चाई उजागर करती है। स्त्री दिवस से ठीक एक दिन पहले सफ़ीदों की एक अवैध फ़ैक्ट्री में काम करने वाले मज़दूरों के लिए वह दिन किसी भयावह सपने से कम नहीं था। जींद ज़िले के सफ़ीदों में भाट कॉलोनी स्थित गुलाल और रंग बनाने वाली एक फ़ैक्ट्री में 7 मार्च को भीषण आग लग गयी। इस हादसे में 10 स्त्री मज़दूरों की मौत हो गयी, जबकि लगभग 12 मज़दूर, जिनमें अधिकतर स्त्रियाँ हैं, गम्भीर रूप से झुलस गयीं।

इस भीषण आग ने एक बार फिर कार्यस्थलों पर मज़दूरों की जीवन-सुरक्षा की सच्चाई उजागर कर दी। बताया जा रहा है कि फ़ैक्ट्री के मुख्य गेट पर बाहर से ताला लगा हुआ था, जिसके कारण मज़दूर समय रहते बाहर नहीं निकल सके और भीतर ही क़ैद होकर जलते रहे। जान बचाने के लिए कुछ मज़दूरों ने छत से छलांग लगायी, लेकिन कई मज़दूरों की चीख-पुकार बाहर तक पहुँच ही नहीं पायी और उन्होंने फ़ैक्ट्री के भीतर ही दम तोड़ दिया। यह दृश्य किसी बड़ी त्रासदी से कम नहीं था।

प्राप्त जानकारी के अनुसार यह फ़ैक्ट्री रिहायशी इलाके में अवैध रूप से चल रही थी। मुनाफ़ाख़ोर मालिक मज़दूरों से काम करवाने के लिए बाहर से ताला लगाकर उन्हें अन्दर बन्द कर देता था। मज़दूरों के परिजनों के अनुसार यहाँ काम करने वाली महिलाओं को मात्र 6000 रुपये मासिक मज़दूरी मिलती थी, जो क़ानूनन तय न्यूनतम मज़दूरी से भी बेहद कम है। फ़ैक्ट्री में ज्वलनशील पाउडर और रसायन मौजूद थे, लेकिन अग्निरोधक उपकरण, दस्ताने, जूते या अन्य सुरक्षा साधन उपलब्ध नहीं थे। स्थानीय लोगों के अनुसार आग लगने का कारण शॉर्ट सर्किट बताया जा रहा है, लेकिन यह केवल तात्कालिक कारण है। असल कारण हैं—बिना अनुमति के चल रही फ़ैक्ट्री, सुरक्षा मानकों की अनदेखी, फ़ायर सेफ़्टी का अभाव और आपातकालीन निकास का न होना।

यह हादसा कोई साधारण दुर्घटना नहीं, बल्कि भाजपा की हरियाणा सरकार की पूँजीपरस्त नीतियों और प्रशासनिक लापरवाही का नतीजा है। अवैध रूप से चल रही फ़ैक्ट्रियों पर कार्रवाई न करना और सुरक्षा मानकों की अनदेखी इसी नीति का हिस्सा है। इस दर्दनाक घटना के बाद सरकार ने खानापूर्ति करते हुए मृतकों के लिए 5-5 लाख और घायलों के लिए 2 लाख रुपये मुआवज़े की घोषणा की है। लेकिन सवाल यह है कि क्या मज़दूरों की जान की कीमत इतनी ही है? यह घटना मज़दूरों के लिए एक कड़वी सीख भी है कि मुनाफ़े की अन्धी दौड़ में मालिकों का पूरा वर्ग सुरक्षा इंतज़ामों की अनदेखी करता है। लागत कम करने और मुनाफ़ा बढ़ाने के लिए औद्योगिक इकाइयों में सुरक्षा मानकों को अक्सर ताक पर रख दिया जाता है, जिसका खामियाज़ा मज़दूरों को अपनी जान देकर चुकाना पड़ता है।

मोदी सरकार एक तरफ़ नये लेबर कोड के तहत महिलाओं को रात की पाली में काम करने की अनुमति देने

(पेज 4 पर जारी)

स्त्री दिवस के सरकारी नारे और 'स्त्री सशक्तिकरण' के जुमलों के पीछे मेहनतकश स्त्रियों के वास्तविक हालात क्या हैं?

इस साल भी 8 मार्च को मोदी सरकार द्वारा बड़े-बड़े मंचों से स्त्री अधिकारों, समानता और सम्मान की बातें की गयीं। मज़दूर-विरोधी चार लेबर कोड में स्त्री कामगारों के लिए नाईट शिफ्ट की मंज़ूरी को स्त्री सशक्तिकरण के रूप में पेश किया जा रहा है, लेकिन मेहनतकश स्त्रियों की वास्तविक स्थिति इन फ़र्ज़ी दावों से बिल्कुल अलग दिखायी पड़ती है।

पिछले बीस–पच्चीस वर्षों में खास तौर पर दुनिया की हवा कुछ उल्टी दिशा में बहती दिख रही है। हमारे देश में ही नहीं, पूरी दुनिया में मेहनतकशों पर लुटेरी ताकतों का दबदबा बढ़ता गया है। लूट-खसोट का बोलबाला है और मजदूरों ने जिन अधिकारों को लम्बे संघर्षों के बाद हासिल किया था, वे धीरे-धीरे छीने जा रहे हैं। कानून बदले जा रहे हैं और पुलिस व दमनकारी ताक़तों के सहारे हक़ की हर आवाज़ को दबाने की कोशिश की जा रही है।

आज हालत यह है कि मजदूर, औरत-मर्द दोनों ही, बारह–चौदह घंटे तक कड़ी मेहनत करने के बाद भी दो वक्त की रोटी, तन ढँकने के कपड़े, सिर पर छत, इलाज और बच्चों की पढ़ाई का इंतज़ाम मुश्किल से कर पाते हैं। दूसरी ओर पूँजीपतियों, बड़े अफ़सरों और नेताओं की दौलत और ऐशो-आराम की फेहरिस्त इतनी लंबी है कि उसके लिए पन्ने भी कम पड़ जाते हैं।

मेहनतकश औरतों की स्थिति तो और भी भयावह है। कई जगहों पर हमारी दिहाड़ी पुरुष मजदूरों से भी कम होती है, जबकि सबसे कठिन, उबाऊ और बारीक काम हमसे ही कराये जाते हैं। क़ानून किताबों में लिखे रह जाते हैं, लेकिन ज़मीनी हक़ हमें नहीं मिलते। अनेक फ़ैक्ट्रियों में महिलाओं के लिए अलग शौचालय तक नहीं होते, पालनाघर जैसी सुविधाएँ तो दूर की बात है। दमघोंटू माहौल में दस-दस, बारह-बारह घंटे काम करने के बाद भी हर समय नौकरी से निकाल दिये जाने का डर बना रहता है। इसके साथ ही मैनेजरों, सुपरवाइज़रों और फोरमैनों की भद्दी टिप्पणियों, गंदी निगाहों और छेड़छाड़-यौन शोषण का सामना भी हमें करना पड़ता है।

घर के भीतर भी ग़रीबी और तनाव का जो नर्क जैसा माहौल बनता है, उसका सबसे ज़्यादा बोझ भी औरतों के ही कंधों पर पड़ता है। इस तरह मेहनतकश औरतें दोहरी – कभी-कभी तिहरी – मार झेलती हैं : काम की जगह पर शोषण, समाज में असमानता और घर में बढ़ती परेशानियाँ।

हमें अन्तरराष्ट्रीय स्त्री मज़दूर दिवस की क्रान्तिकारी विरासत को जानना होगा!

आज स्त्री मुक्ति की परियोजना को प्रतीकात्मक जश्न और रस्मी अनुष्ठानों से आगे ले जाने की ज़रूरत है!

● ज्योति

देह नहीं होती है
एक दिन स्त्री
और उलट-पुलट जाती है
सारी दुनिया
अचानक!
– कात्यायनी

हर साल की तरह इस साल भी 8 मार्च यानी अन्तरराष्ट्रीय कामगार स्त्री दिवस आया और एक रस्मी क़वायद की तरह पूरी दुनिया में मनाया गया। इस दिन को पूँजी की ताक़तों और सत्ता के दिखावटी सरोकार ने सालाना अनुष्ठान में तब्दील कर अपने ही गौरवशाली इतिहास से काटकर रख दिया है। इस दिन की असली क्रान्तिकारी विरासत को मिटाने के मक़सद से ही इस दिन का नाम तक अन्तरराष्ट्रीय कामगार स्त्री दिवस से बदल कर अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस कर दिया गया। लेकिन आज जब महिलाओं के ख़िलाफ़ जघन्य अपराधों की बाढ-सी आ गयी है, तब इस प्रकार के 'सालाना त्योहार' इस दिन के महत्व को कम कर, उस क्रान्तिकारी विरासत से सीखने की हमारी ज़रूरत और चाहत को कुन्द करने का काम करते हैं।

आज देश की सत्ता में बैठे फ़ासिस्ट एक ओर "बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ" के नारे लगाते हैं और दूसरी ओर महिलाओं के उत्पीड़न और शोषण करने वाले अपराधियों-बलात्कारियों का माल्यार्पण कर उनका स्वागत-सत्कार करते हैं। एक ऐसे वक़्त में जब ख़ुद सरकारी एजेंसी राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB) के अनुसार वर्ष 2022 में महिलाओं के ख़िलाफ़ अपराध के 4,45,256 मामले दर्ज किये गये, तब महिला दिवस का मतलब सिर्फ़ बसों में मुफ़्त यात्रा, दुकानों में "स्पेशल ऑफ़र" और कुछ औपचारिक भाषण तक सीमित रह जाना किसी त्रासदी से कम नहीं है। वास्तव में यह दिन महज़ एकदिन के उत्सव या समझौते का दिन नहीं, बल्कि एक जुझारू संघर्ष का प्रतीक दिवस है।

उन्नीसवीं सदी में जब पूँजीवादी व्यवस्था अपने सबसे शोषणकारी दौरों में से एक में थी, तब स्त्री मजदूरों ने अपने अधिकारों के लिए आवाज़ उठायी। 1857 में न्यूयॉर्क, अमेरिका की कपड़ा मिलों में काम करने वाली महिलाओं ने 16 घण्टे की अमानवीय कार्य अवधि के ख़िलाफ़ और बेहतर मज़दूरी की माँग करते हुए प्रदर्शन किया। इस आन्दोलन को बुरी तरह कुचल दिया गया, लेकिन इससे संघर्ष की चिंगारी बुझी नहीं। दो साल बाद इन स्त्री कामगारों ने अपनी पहली यूनियन बनायी और 1908 में लगभग 20,000 स्त्री श्रमिकों ने न्यूयॉर्क में फिर प्रदर्शन किया। उनकी माँगें थीं 'बेहतर काम की स्थितियाँ, मतदान का अधिकार और सम्मानजनक मज़दूरी'। इस आन्दोलन ने उस वक़्त एक बड़े स्तर पर दुनिया का ध्यान आकर्षित किया। इसके बाद 1910 में कोपेनहेगेन में अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन के दौरान जर्मन क्रान्तिकारी मज़दूर नेता क्लारा ज़ेटकिन ने प्रस्तावित किया कि स्त्रियों के संघर्ष को सम्मान देने के लिए एक अन्तरराष्ट्रीय दिवस मनाया जाये। यह प्रस्ताव उस सम्मेलन में स्वीकार किये जाने के बाद यह दिन पहली बार अन्तरराष्ट्रीय कामगार स्त्री दिवस 19 मार्च, 1911 को ऑस्ट्रिया, डेनमार्क, जर्मनी और स्विट्ज़रलैंड में मनाया गया। उस वक़्त से 1921 तक हर साल फ़रवरी माह का आख़िरी रविवार अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस के रूप में मनाया जाता रहा।

रूस में 1917 की फ़रवरी क्रान्ति के दौरान जब युद्ध रोकने, भोजन, आवास और बेहतर जीवन स्थितयों की माँग को लेकर बड़ी संख्या में स्त्रियों ने प्रदर्शन किया तब स्त्रियों के इस आन्दोलन से पैदा होने वाली आग ने ज़ारशाही को राख़ करने में महती भूमिका अदा की। यही क्रान्तिकारी आग आगे बढ़कर केरेंस्की की आरज़ी सरकार का ध्वंस करने में कामयाब हुई जब बोल्शेविक पार्टी और मज़दूर वर्ग के महान नेता लेनिन के नेतृत्व में मज़दूर वर्ग ने सोवियत रूस में इतिहास की पहली सचेतन मज़दूर क्रान्ति को अंजाम दिया और मज़दूर राज की स्थापना की। इस क्रान्तिकारी परिवर्तन को अंजाम देने में स्त्रियों की एक बड़ी आबादी का शामिल होना भी एक अहम कारक था। सोवियत रूस की समाजवादी सत्ता ने पहली बार स्त्रियों को चूल्हे-चौखट से आज़ाद किया और उनको मताधिकार मिला। चूँकि ऐतिहासिक तौर पर स्त्रियों का यह जुझारू प्रदर्शन भी 8 मार्च को शुरू हुआ था, इसलिए अंत में इसी तारीख़ को अन्तरराष्ट्रीय कामगार स्त्री दिवस के रूप में चुना गया।

संघर्षों की गर्मी कुछ देशों तक ही सीमित नहीं रही बल्कि इसकी आँच दुनिया भर में औपनिवेशिक दमन झेल रहे देशों तक भी पहुँची। अन्तरराष्ट्रीय कामगार स्त्री दिवस की क्रान्तिकारी विरासत से प्रेरणा लेते हुए औपनिवेशिक देशों की स्त्रियों ने भी दमन और उत्पीड़न के जुए से आज़ादी के लिए बड़े पैमाने पर राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों में न केवल भागीदारी की बल्कि कई जगहों पर आन्दोलनों का नेतृत्व भी किया। इन दशाब्दियों में दुनियाभर की स्त्रियों ने पूँजी और पितृसत्ता के ख़िलाफ़ अपने अधिकार के लिए कई संगठित लड़ाइयाँ लड़ीं और कई अधिकार हासिल भी किये। भारत में भी राष्ट्रीय आन्दोलन से लेकर तमाम मज़दूरों-मेहनतकशों के आन्दोलन में औरतों ने बड़े पैमाने पर शिरकत की।

इतिहास हमेशा इस बात का गवाह रहा है कि बिना संघर्ष किये, बिना लड़े, कुछ भी हासिल कर पाना मेहनतकश जनता के लिए नामुमकिन है। आज हमारे देश में भी मज़दूर-मेहनतकशों के हालात बेहद खराब है। खास तौर पर मोदी सरकार के सत्ता में आने के बाद से यह स्थिति और भयावह होती चली गयी है। स्त्रियों की बात करें तो आज के भारत में उनकी स्थिति बद से बदतर होती जा रही है। आज के दौर में स्त्री कामगारों को पुरुषों के मुकाबले लगभग 67 प्रतिशत ही वेतन मिलने के बाद हुक्मरानों द्वारा स्त्री-पुरुष समानता की लच्छेदार बात करना भी एक मज़ाक़ से कम नहीं लगता है। भारत में बड़ी संख्या में स्त्रियाँ असंगठित क्षेत्र में काम करती हैं, जहाँ 12–14 घण्टे काम करने के बावजूद उन्हें न तो समान वेतन ही मिलता है और न ही कोई सामाजिक सुरक्षा ही मिलती है। यही नहीं, आर्थिक मंदी के समय सबसे पहले स्त्री कामगारों की ही छंटनी होती है और आर्थिक तेजी के दौर में उन्हें सस्ते श्रम के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। आज की सड़ी-गली पूँजीवादी व्यवस्था और इसकी बीमार संस्कृति ने स्त्रियों को सिर्फ़ उपभोग की वस्तु मात्र बना कर रख दिया है। स्त्रियाँ आज पूँजीवाद और पूँजीवादी पितृसत्ता की दोहरी गुलामी झेल रही हैं।

जो लोग स्त्रियों की ग़ुलामी का हल और स्त्री मुक्ति का रास्ता अस्मितावादी राजनीति या नारीवाद में देखते हैं, वे भूल जाते हैं कि स्त्री उत्पीड़न की जड़ में आज यही पूँजीवादी व्यवस्था है जिसकी चौहद्दी को ऐसे तमाम सुधारवादी लोग लांघना ही नहीं चाहते हैं। ऐसी लोग इस बात को भूल जाते हैं कि स्त्री उत्पीड़न के मसले को स्त्री बनाम पुरुष की लड़ाई तक सीमित या अपचयित कर देना दरअसल स्त्रियों के संरचात्मक उत्पीड़न और उनके व्यवस्थागत दमन की हक़ीक़त को नज़रअंदाज़ करना है जिसकी शुरुआत वर्ग समाज और निजी सम्पत्ति के उद्भव से हुई थी और वर्तमान दौर में इस उत्पीड़न को बनाये रखने में पूँजीवाद, पूँजीपति वर्ग और पूँजीवादी राज्य की भूमिका को नकारना है। स्त्री मुक्ति की परियोजना को समस्त जनसमुदायों की मुक्ति की परियोजना से अलग करके व्यक्तिगत विद्रोह तक सीमित कर देने से बहुसंख्यक स्त्रियों की वास्तविक स्थिति में परिवर्तन नहीं लाया जा सकता है।

आज ज़रूरत है कि हम स्त्री दिवस की क्रान्तिकारी विरासत से परिचित हों, इसके असली महत्व को समझें और इस विरासत को आगे बढ़ायें। आज ज़रूरत है कि स्त्रियों की स्वतंत्रता और समान अधिकारों के लिए संगठित होकर नये सिरे से संघर्षों की शुरुआत की जाये। इसके साथ ही जो अधिकार संघर्षों के बूते अब तक हासिल किये गये हैं उनकी हिफ़ाज़त की जाये और उन्हें ज़मीनी स्तर पर लागू कराने की माँग को लेकर जुझारू तरीक़े से लगातार संघर्ष किये जायें। इसके अलावा स्त्री मुक्ति आन्दोलन को शहरी उच्च मध्यवर्गीय दायरे से बाहर लाकर इसे मेहनतकश वर्ग की व्यापक आबादी तक ले जाये जाने की भी ज़रूरत है और इसे एक जन आन्दोलन में तब्दील करने की ज़रूरत है। वैसे भी स्त्री उत्पीड़न और पितृसत्ता के विरुद्ध लड़ने का काम केवल स्त्रियों का काम नहीं है। पूँजीवादी पितृसत्तात्मक सोच के विरुद्ध निरंतर वैचारिक और व्यावहारिक संघर्ष चलाते हुए आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक स्तर पर स्त्री-पुरुष की पूर्ण समानता के लिए सतत संघर्ष कर ही हम अपनी विरासत को सच्चे मायनों में जीवित रख सकते हैं। आज यह समझना बेहद ज़रूरी है कि पितृसत्ता के ख़िलाफ़ कोई भी संघर्ष यदि पूँजीवाद-विरोधी संघर्ष से अलग होगा तो वह प्रभावी नहीं हो सकता। इसी प्रकार यह भी समझना उतना ही ज़रूरी है कि आधी आबादी की सक्रिय भागीदारी के बिना मजदूर वर्ग और आम मेहनतकश भी अपनी मुक्ति की लड़ाई को सफलतापूर्वक अंजाम नहीं दे सकते हैं।

… … …

अपराजिता

(सृष्टिकर्ता ने नारी को रचते समय बिस्तर, घर, ज़ेवर, अपवित्र इच्छाएँ, ईर्ष्या, बेईमानी और दुर्व्यवहार दिया –'मनु')

उन्होंने यही
सिर्फ़ यही दिया हमें
अपनी वहशी वासनाओं की
तृप्ति के लिए
दिया एक बिस्तर
जीवन घिसने के लिए,
राख होते रहने के लिए
चौका-बरतन करने के लिए
बस एक घर
समय-समय पर
नुमाइश के लिए गहने पहनाए
और हमारी आत्मा को
पराजित करने के लिए
लाद दिया उस पर
तमाम अपवित्र इच्छाओं
और दुष्कर्मों का भार।

पर नहीं कर सके पराजित वे
हमारी अजेय आत्मा को
उनके उत्तराधिकारी
और फिर उनके
उत्तराधिकारियों के उत्तराधिकारी भी
नहीं पराजित कर सके जिस तरह
मानवता की अमर-अजय आत्मा को
उसी तरह नहीं पराजित कर सके वे
हमारी अजेय आत्मा को
आज भी वह संघर्षरत है
नित-निरन्तर
उनके साथ
जिनके पास खोने को सिर्फ़ ज़ंजीरें ही हैं
बिल्कुल हमारी ही तरह!
– कात्यायनी

स्त्री मज़दूर दिवस और स्त्री मज़दूरों के हालात

(पेज 3 से आगे)

की बात कर रही है, लेकिन दूसरी तरफ़ फ़ैक्ट्रियों में उनकी सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए कोई ठोस क़दम नहीं उठाती है। नये लेबर कोड के तहत व्यावसायिक सुरक्षा, स्वास्थ्य और कार्यस्थितियों से जुड़ी संहिता में कई ऐसे बदलाव किये गये हैं जो मज़दूरों के लिए ख़तरनाक साबित हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, अब बिजली से चलने वाली इकाई को फ़ैक्ट्री मानने के लिए कम से कम 20 मज़दूर और बिना बिजली वाली इकाई के लिए 40 मज़दूर होना आवश्यक कर दिया गया है। इससे कई छोटी इकाइयाँ श्रम कानूनों के दायरे से बाहर हो जायेंगी और वहाँ काम करने वाले मजदूरों को सुरक्षा, काम के घंटे और स्वास्थ्य सम्बन्धी कई क़ानूनी सुविधाएँ नहीं मिल पायेंगी।

इसके अलावा नये लेबर कोड में फ़ैक्ट्री इंस्पेक्टर की जगह "इंस्पेक्टर-कम-फैसिलिटेटर" की व्यवस्था की गयी है, जिसकी भूमिका मुख्यतः उद्योगों को नियमों के पालन में "सहायता" करने की बतायी जा रही है। यानी अब से निरीक्षण प्रक्रिया का बड़ा हिस्सा ऑनलाइन रिपोर्ट और डिजिटल रिकॉर्ड पर आधारित होगा। ज़ाहिरा तौर पर इससे वास्तविक निरीक्षण और जवाबदेही कमज़ोर पड़ेगी।

ऐसे में सवाल है कि जब मेहनतकश औरतों की ज़िन्दगी इतनी कठिन है, तो केवल नारों और औपचारिक कार्यक्रमों से स्त्री मुक्ति कैसे सम्भव होगी? असली बदलाव तब आयेगा जब मेहनतकश औरतें अपने अधिकारों के लिए संगठित होकर संघर्ष करेंगी और बराबरी, सम्मान तथा बेहतर जीवन के लिए अपनी आवाज़ बुलंद करेंगी।

इन परिस्थितियों में यह भी सवाल उठता है कि मज़दूर कब तक पूँजीपतियों के मुनाफ़े की भट्ठी में झोंके जाते रहेंगे? पूँजीवादी व्यवस्था में मज़दूरों की जान अक्सर सस्ती समझी जाती है। जब तक हम मज़दूर इस शोषण और लापरवाही के ख़िलाफ़ एकजुट होकर आवाज़ नहीं उठाएंगे, तब तक ऐसी "मौत की फ़ैक्ट्रियाँ" मज़दूरों की जान लेती रहेंगी। इसलिए हर मेहनतकश के लिए सच्चा स्त्री दिवस वही होगा, जब हर स्त्री मज़दूर को सुरक्षित काम, सम्मानजनक जीवन और बराबरी का अधिकार मिलेगा। 8 मार्च की विरासत हमें यही सिखाती है कि अपने अधिकारों के लिए संगठित संघर्ष ही एकमात्र रास्ता है।

नोएडा की एक फ़ैक्ट्री में लगी भीषण आग

फ़ैक्ट्री मालिकों को बचाने में लगा पुलिस-प्रशासन और गोदी मीडिया हुआ बेनक़ाब

देश के कारख़ानों में सुरक्षा के खस्ताहाल इन्तज़ामात

● आदित्य

बीते 12 मार्च को नोएडा के सेक्टर 4 की स्मार्ट इलेक्ट्रिक मीटर बनाने वाली एक निजी कम्पनी कैपिटल पॉवर सिस्टम लिमिटेड में आग लग गयी। यह आग सुबह के चार बजे लगी जब कम्पनी में नाइट शिफ़्ट चल रही थी। इस आग में अबतक (यह रिपोर्ट लिखे जाने तक) एक 28 वर्षीय मज़दूर के जलकर मरने की पुष्टि हुई है। आधिकारिक तौर पर तो और किसी के लापता होने की ख़बर नहीं है लेकिन घटना के साक्षी रहे मज़दूरों की मानें तो यह संख्या एक से ज़्यादा हो सकती है।

मज़दूरों के अनुसार इस पाँच मंज़िला फ़ैक्ट्री में घटना के वक़्त क़रीब 500-600 मज़दूर काम कर रहे थे। आग लगने के बाद कम्पनी में कोई अलार्म या सायरन नहीं बजा, जिस वजह से कई लोग बाहर नहीं निकल पाये। आग का पता तब चला जब कैन्टीन में सिलेण्डर फटने से ज़ोरदार धमाका हुआ। धमाका इतना तेज़ था कि फ़ैक्ट्री के सामने रहने वाले कुछ मज़दूरों के घरों की छतें भी टूट गयीं। अपनी जान बचाने के लिए मज़दूरों को पाँचवी मंज़िल तक से कूदना पड़ा। आग इतनी भीषण थी कि इसे बुझाने में चार दिन लग गये। छत से कूदने से लगभग 35 मज़दूर घायल हुए जिनमें ज़्यादातर के पैर टूट गये हैं, जबकि एक मज़दूर के सर में चोट आयी है।

आग लगने से पहले फ़ैक्ट्री और वहाँ काम कर रहे मज़दूरों की स्थिति

नोएडा की इस फ़ैक्ट्री में हुई इस घटना ने न सिर्फ़ नोएडा की फ़ैक्ट्रियों में सुरक्षा व्यवस्था की पोल खोल दी है बल्कि साथ ही पुलिस, प्रशासन और इस पूँजीवादी मीडिया की हक़ीक़त भी बयान कर दी है। इस फ़ैक्ट्री में काम कर रहे सभी मज़दूर ठेके पर थे, जिन्हें अलग-अलग ठेकेदारों द्वारा भर्ती किया जाता था। उनकी तनख्वाह 10-12 हज़ार रुपये ही थी। यहाँ 12-12 घण्टे की दो शिफ़्ट चलती थीं। ओवरटाइम का भुगतान भी डबल रेट से नहीं करके सिंगल रेट से ही किया जाता था। कम्पनी ने सुरक्षा व्यवस्था के सारे नियमों को दरकिनार करते हुए, तमाम सुरक्षा उपकरणों को बाईपास कर रखा था। ऐसे में यह लाज़मी था कि कोई भी घटना होने पर मज़दूरों की जान को ख़तरा हो सकता था।

वैसे तो पुलिस और प्रशासन द्वारा आग लगने का कारण शॉर्ट सर्किट बताया जा रहा है, लेकिन वहाँ काम कर रहे मज़दूरों ने बताया कि ज़्यादा सम्भावना है कि यह आग लिफ़्ट की वजह से लगी हो, जिसकी हालत लम्बे समय से ख़राब थी। मैनेजमेण्ट के लोगों ने इसपर कोई ध्यान नहीं दिया। नतीजतन 12 तारीख़ को फ़ैक्ट्री में भीषण आग लग गयी। आग बेसमेण्ट से शुरू हुई और फिर ऊपर फैली। मज़दूरों ने बताया कि अगर समय से सायरन या अलार्म बज गया होता तो सभी मज़दूर आराम से फ़ैक्ट्री से बाहर निकल सकते थे और आग पर क़ाबू पाया जा सकता था।

घटना के बाद पुलिस, प्रशासन और गोदी मीडिया का रवैया

नोएडा में जिस जगह आग लगी वहाँ से दो किलोमीटर से भी कम दायरे में पुलिस और दमकल विभाग दोनों के स्टेशन हैं। लेकिन पुलिस और दमकल को घटनास्थल पर पहुँचने में ढाई-तीन घण्टे का समय लग गया। घटनास्थल पर पहुँचने के बाद भी पुलिस और प्रशासन का ज़ोर इस बात पर ज़्यादा था कि इस घटना का पता लोगों को न चले और मामले को रफ़ा-दफ़ा कर दिया जाये। 'बिगुल मज़दूर दस्ता' के कार्यकर्ता जब घटनास्थल पर पहुँचे तो उन्हें अन्दर तक नहीं जाने दिया गया। पुलिस ने बेशर्मी की हद तो तब पार कर दी जब घटना में एक मज़दूर की मौत की पुष्टि होने के बावजूद पुलिस ने एफ़आईआर तक दर्ज नहीं की। पुलिस का कहना है कि क्योंकि उन्हें कोई लिखित शिक़ायत नहीं मिली है इसलिए वे एफ़आईआर दर्ज नहीं कर सकते!

बाद में ज़िलाधिकारी मेधा रूपम द्वारा यह दावा किया गया कि घायल मज़दूरों को उचित उपचार मुहैया कराया जा रहा है। लेकिन जब 'बिगुल मज़दूर दस्ता' के कार्यकर्ता अस्पताल में घायल मज़दूरों से मिलने पहुँचे तो पता चला कि उपचार के नाम पर बस खानापूरी की गयी थी और सभी मज़दूरों की दूसरे दिन ही अस्पताल से छुट्टी कर दी गयी। इनमें तो कई मज़दूर ऐसे थे जिनके दोनों ही पैर टूटे थे और वे चलना तो दूर खड़े होने की हालत में भी नहीं थे। इन मज़दूरों को मुआवज़े के नाम पर ठेकेदारों द्वारा बस दो से चार हज़ार रुपये दिये गये हैं।

इतना ही नहीं, नोएडा के सेक्टर 4 से दो किलोमीटर दूर फ़िल्म सिटी भी है जहाँ कमोबेश सभी बड़े मीडिया चैनलों के दफ़्तर मौजूद हैं, लेकिन क्या मजाल कि एक भी बड़े न्यूज़ चैनल ने इसे तवज्जो दी हो! ये वही मीडिया चैनल हैं जो अभी दो महीने पहले पुलिस व प्रशासन के नाकारेपन की वजह से हुए सॉफ़्टवेयर इंजीनियर युवराज मेहता की मौत पर रिपोर्टें तैयार किये जा रहे थे। यह अलग बात है कि उस घटना में भी सरकार और प्रशासन की सच्चाई उजागर करने की जगह वे इसमें बस मसाला ढूँढ रहे थे।

नोएडा व देश की फ़ैक्ट्रियों के हालात

यह कहानी आज कमोबेश नोएडा के या यूँ कहें देशभर के तमाम कारख़ानों की है। आज लगभग हर जगह मज़दूरों से ठेके पर काम कराया जा रहा है। ओवरटाइम का भुगतान डबल रेट से तो दूर, मज़दूरों को न्यूनतम मज़दूरी तक नहीं दी जाती। उत्पादन बढ़ाने के लिए कारख़ानों में तमाम सुरक्षा नियमों को बाईपास कर दिया जाता है, जिससे आये-दिन मज़दूरों के साथ कोई न कोई हादसा होता रहता है और जिसे पुलिस और प्रशासन मिलकर बाहर नहीं आने देते। सामाजिक सुरक्षा का तो इन मज़दूरों के लिए जैसे अस्तित्व ही नहीं है। मज़दूरों को जब चाहे तब काम से निकाल दिया जाता है। श्रम क़ानूनों की तो पहले ही तिलांजलि दी जा चुकी है। अब नये फ़ासीवादी लेबर कोड लागू होने के बाद से तो ये हालात और भी भयावह होने वाले हैं।

कुल मिलाकर हर जगह मज़दूरों के हालात बद से बदतर हैं और उन्हें बस काम करने की मशीन समझा जाता है। उनका जमकर शोषण किया जा रहा है ताकि कम्पनी मालिकों, पूँजीपतियों को बेहिसाब मुनाफ़ा पहुँचाया जा सके। लेकिन इनका काम इतने से भी नहीं चल रहा है। यही कारण है कि सत्ता में मौजूद और फ़िलहाल पूँजीपतियों की चहेती फ़ासीवादी भाजपा पुराने श्रम क़ानूनों को ख़त्म करके 4 लेबर कोड लेकर आयी है। इन नये क़ानूनों के आने के बाद तो कहने के लिए जो सुरक्षा के उपकरण कम्पनियों को लगाने पड़ते थे उसकी भी ज़रूरत नहीं पड़ेगी क्योंकि अब कम्पनियाँ ख़ुद को सर्टिफ़िकेट दे सकेंगी कि उनकी कम्पनी में सारी सुविधाएँ और सारे सुरक्षा के उपकरण मौजूद हैं! और तो और, फ़ैक्ट्री इंस्पेक्टरों की भूमिका को ख़त्म करके 'फ़ेसिलिटेटर' की भूमिका में तब्दील कर दिया गया है जोकि अब अनौपचारिक तौर पर नहीं बल्कि औपचारिक और क़ानूनी तौर पर मालिकों को मदद पहुँचायेंगे! इसके अलावा कारख़ानों के औचक निरीक्षण का प्रावधान भी इन नये काले क़ानूनों में ख़त्म कर दिया गया है।

जब पुराने श्रम क़ानूनों के होते हुए मज़दूरों का इस क़दर शोषण किया जा रहा है, सुरक्षा की कोई गारण्टी नहीं है, सुरक्षा के सारे नियमों की धज्जियाँ उड़ायी जा रही हैं, तो ऐसे में यह समझा जा सकता है कि 4 लेबर कोड लागू होने के बाद मज़दूरों की हालत क्या होगी! आज देश के हरेक मज़दूर को यह बात समझ लेनी होगी कि इस पूँजीवादी व्यवस्था में इन नारकीय और ख़तरनाक परिस्थितियों में काम करना ही हमारी नियति है। जब तक यह व्यवस्था बनी रहेगी तब तक ऐसे ही अपनी जान जोखिम में डालकर काम करने के लिए हमारी मजबूरी भी बनी रहेगी। इसलिए वक़्त आ गया है कि हम इन्सानी ज़िन्दगी जीने के अपने बेहद बुनियादी हक़ को हासिल करने की लड़ाई में तत्काल शामिल हों। पहले ही बहुत देर हो चुकी है।

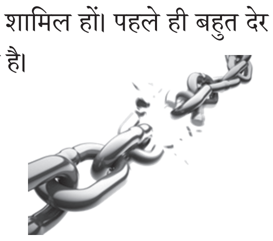

नागपुर कारख़ाने में विस्फोट से 20 मज़दूरों की मौत और मीडिया की शर्मनाक चुप्पी

मज़दूरों का जीवन तो मीडिया में कहीं दिखता ही नहीं था, अब उनकी मौत भी 'ख़बर' नहीं रही

● बिगुल डेस्क

पिछले 1 मार्च 2026 को महाराष्ट्र के नागपुर जिले में औद्योगिक विस्फोटक बनाने वाली एसबीएल एनर्जी लिमिटेड की फ़ैक्ट्री में हुए भीषण धमाके में कम से कम 20 लोगों की मौत हो गई और 23 लोग घायल हुए। इनमें अधिकांश स्त्री मज़दूर थीं। भारी जनाक्रोश के दबाव में पुलिस ने कम्पनी के कुछ अधिकारियों सहित 11 लोगों को गिरफ़्तार किया, जबकि मालिक आलोक चौधरी आराम से "फ़रार" हो गया।

पिछले कुछ सालों में, इस इलाके के कारख़ानों में कई जानलेवा धमाके हुए हैं – दिसम्बर 2023 में सोलर इण्डस्ट्रीज़ में नौ लोग मारे गये, जून 2024 में चामुण्डी एक्सप्लोसिव्स में पाँच, जनवरी 2025 में भण्डारा ऑर्डनेंस फ़ैक्ट्री में नौ मज़दूर मारे गये और सितम्बर 2025 में सोलर इण्डस्ट्रीज़ में एक और धमाका हुआ जिसमें एक वर्कर की मौत हो गयी और 30 घायल हो गये।

भण्डारा ऑर्डनेंस फ़ैक्ट्री में, नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल ने सुरक्षा उपाय लागू करने में नाकामी का हवाला देते हुए आपराधिक कार्रवाई का आदेश दिया था। कई संगठनों ने आरोप लगाया कि सुरक्षा उपाय लागू करने और सुरक्षा ऑडिट में ढिलाई के बारे में बार-बार दी गई चेतावनियों पर ध्यान नहीं दिया गया। ये घटनाएँ नागपुर औद्योगिक पट्टी में मज़दूरों के प्रति जानलेवा लापरवाही और व्यवस्था की गम्भीर खामियों की ओर इशारा करती हैं। इससे पहले भी यहाँ ऐसे हादसे होते रहे हैं।

हम यहाँ एक और बेहद ख़तरनाक चीज़ की ओर 'मज़दूर बिगुल' के पाठकों का ध्यान खींचना चाहते हैं। वह है, इतनी बड़ी घटना के प्रति देश के पूँजीवादी मीडिया का रवैया!

ज़्यादातर टीवी न्यूज़ चैनलों ने इसे या तो कवर ही नहीं किया या बस ख़बर की पट्टी चला दी। ख़बरों की सच्चाई की जाँच करने वाली संस्था 'ऐल्ट न्यूज़' की जाँच में पता चला कि रिपब्लिक वर्ल्ड, एनडीटीवी, टाइम्स नाउ, इंडिया टुडे और सीएनएन-न्यूज़18 ने 1 से 3 मार्च के बीच इस हादसे पर अपने यूट्यूब या एक्स प्लेटफ़ॉर्म पर एक भी वीडियो रिपोर्ट साझा नहीं की। जबकि ये चैनल लगातार इनपर अपनी ख़बरें शेयर करते रहते हैं।

ये चैनल इस दौरान मुख्य रूप से ईरान-अमेरिका-इज़रायल युद्ध पर ख़बरें और बहस चलाते रहे। रिपब्लिक टीवी ने प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की रैली और मन्दिर यात्रा का प्रसारण भी किया। पर नागपुर हादसे का कहीं ज़िक्र भी नहीं था। एनडीटीवी ने भी ईरान संकट, ड्रोन तकनीक और वैश्विक हालात पर चर्चा की, लेकिन नागपुर विस्फोट पर कोई वीडियो बुलेटिन नहीं दिखा। इंडिया टुडे और टाइम्स नाउ ने भी अंतरराष्ट्रीय राजनीति और घरेलू राजनीतिक बयानबाज़ी को प्राथमिकता दी, जबकि नागपुर की घटना उनकी वीडियो कवरेज से ग़ायब रही। सीएनएन-न्यूज़18 ने भी पश्चिम एशिया के तनाव और प्रधानमंत्री की गतिविधियों को प्रमुखता दी, लेकिन 20 मज़दूरों की जान ले लेने वाले इस औद्योगिक हादसे को नजरअन्दाज़ किया।

इस बड़ी औद्योगिक दुर्घटना पर तीन दिनों तक प्रमुख चैनलों की यह चुप्पी क्या बताती है? यह बताती है कि मज़दूरों की ज़िन्दगी इस देश को चलाने वाले लोगों की निगाह में कितनी सस्ती है। मज़दूरों के जीवन की कठिनाइयाँ, उनके संघर्ष तो पहले भी मीडिया में कहीं नज़र नहीं आते थे, अब उनकी मौत भी 'ख़बर' नहीं रही।

नागपुर ही नहीं, देशभर में लगातार कारख़ानों में हो रही दुर्घटनाओं में मज़दूरों की मौतें हो रही हैं। हर साल हज़ारों मज़दूर अपनी जान गँवा देते हैं या बुरी तरह घायल होते हैं। इसकी ज़िम्मेदारी पूरी तरह कारख़ाना मालिकों की होती है जो सुरक्षा उपायों पर पैसे और समय ख़र्च करके अपने मुनाफ़े में ज़रा भी कमी नहीं आने देना चाहते। उनके लिए यह फ़ालतू का ख़र्च है क्योंकि मज़दूर का श्रम और उसकी जान सस्ते में उपलब्ध है। उनके टुकड़ों पर पलने वाले सरकारी अफ़सर और नेता भी उन हत्याओं के लिए उतने ही ज़िम्मेदार हैं जो इस अँधेरगर्दी को देखकर आँखें मूँदे रहते हैं। लेकिन दिनभर टुच्ची और मसालेदार ख़बरें और नफ़रती प्रचार में डूबे टीवी चैनलों के लिए यह रिपोर्ट करने का मसला नहीं है।

इलाहाबाद में मुनाफ़ाखोरी की भेंट चढ़ी मेहनतकशों की ज़िन्दगियाँ

● अविनाश

बीते 23 मार्च को उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद जिले में एक बेहद दर्दनाक हादसे में कम से कम (सरकारी आँकड़ों के मुताबिक) 4 मज़दूरों की जान चली गई और 17 से ज़्यादा मज़दूर घायल हो गए जिनका इलाज स्वरूप रानी मेडिकल कॉलेज में चल रहा है। घायल मजदूरों में से 14 की स्थिति बेहद नाज़ुक है। लेकिन स्थानीय लोगों के मुताबिक मौत का आँकड़ा बतायी गई संख्या से कई गुना ज़्यादा है।

लखनऊ राजमार्ग पर फाफामऊ कस्बे के मलाक हरहर के पास चाँदपुर गाँव स्थित आदर्श कोल्ड स्टोरेज में अमोनिया गैस के रिसाव से टैंकर फट गया। जिससे कोल्ड स्टोरेज की पूरी बिल्डिंग ही भरभरा कर गिर गयी और वहाँ काम करने वाले मज़दूर इसकी चपेट में आ गये। यह कोल्ड स्टोरेज पूर्व सपा विधायक और मन्त्री अंसार अहमद का है। जो पिछले 25 वर्षों से निर्माण और सुरक्षा के सारे मानदण्डों को ताक पर रखकर संचालित हो रहा था। कोल्ड स्टोरेज में आलू रखा जाता था और इसमें करीब 100 मज़दूर कार्यरत थे। मजदूरों को न तो किसी प्रकार की ट्रेनिंग दी गई थी और ना ही सुरक्षा के उपकरण मुहैया कराये गये थे। यहाँ तक की सैकड़ों टन आलू को स्टोर करने वाले इस कोल्ड स्टोरेज में एक भी टेक्नीशियन नहीं था और बिल्डिंग भी बेहद ज़र्जर थी। मुनाफ़ाखोरी के लिए मज़दूरों की जान की कीमत पर क्षमता से बहुत ज्यादा स्टोरेज किया गया था।

स्थानीय लोगों के मुताबिक़ ज़हरीली अमोनिया गैस का रिसाव हुआ और गैस पूरे वातावरण में फैल गया, जिससे आसपास रहने वाले लोगों का दम घुटने लगा, आँखों से आँसू आने लगे और सांस लेने में भी दिक्कत होने लगी। लेकिन मौका रहते मालिक और जिला प्रशासन कान में तेल डाले सोते रहे जब तक की रिसाव की वजह से टैंकर फट नहीं गया और मज़दूरों की मौत नहीं हो गयी। हादसा कितना भयानक था इसका अन्दाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि रेस्क्यू की प्रक्रिया 24 घण्टे से ज़्यादा देर तक चलती रही। विस्फोट के तत्काल बाद मीडिया और आम लोगों को घटना स्थल पर जाने से रोक दिया गया जिससे हादसे की असल तस्वीर अब तक सामने नहीं आ सकी है।

हादसे के बाद पूँजीवादी पार्टियाँ अपनी रिवायत के अनुसार एक-दूसरे पर आरोप प्रत्यारोप लगाना शुरू कर चुकी हैं। तमाम नेता घड़ियाली आँसू बहाते नज़र आ रहे हैं। पूँजीवादी परम्परा के अनुसार सूबे के मुख्यमन्त्री योगी आदित्यनाथ ने मृतकों के परिजनों को 2-2 लाख रूपये और घायलों को 50-50 हजार रुपए की आर्थिक मदद की भी घोषणा कर दी है और जिला उद्यान अधिकारी सौरभ श्रीवास्तव को निलम्बित कर दिया गया है। इस मामले में पुलिस ने 7 लोगों को नामज़द और 5 अज्ञात के ख़िलाफ़ मुकदमा दर्ज कर अंसार अहमद सहित दो अन्य लोगों को हिरासत में लेकर जेल भेज दिया है।

इलाहाबाद में मज़दूरों-मेहनतकशों की जान की क़ीमत पर मुनाफ़ाखोरी की यह कोई पहली घटना नहीं है। उपरोक्त घटना के अगले ही दिन शहर के साऊथ मलाका इलाके में निर्माणाधीन होटल के लिए बेसमेण्ट की खुदाई का काम चल ही रहा था कि बगल मे स्थित एक ज़र्जर गोदाम भरभरा कर काम कर रहे मज़दूरों के ऊपर गिर गया जिसमें दो मज़दूर दब गये। इसमें से एक मज़दूर की इलाज के दौरान मौत हो गई और दूसरे का इलाज एसआरएन अस्पताल में चल रहा है जिसकी हालत नाज़ुक बनी हुई है। इस मामले में ख़बर लिखे जाने तक किसी की जवाबदेही तय नहीं हुई है।

मोदी-योगी सरकार की कुम्भ नगरी सही मायने में पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा मुनाफ़े की हवस को बुझाने के लिए की जाने वाली आम मेहनतकशों की ठण्डी हत्याओं की नगरी बनती जा रही है। अक्सर इन हत्याओं को प्राकृतिक दुर्घटनाओं, हादसों आदि का नाम दे दिया जाता है और बहुत सफ़ाई से लूट और मुनाफ़े के लिए की जाने वाली इन हत्याओं पर प्रशासनिक लीपापोती कर दी जाती है। हर बार इन घटनाओं से होने वाली मौतों की फ़ाइलें एक टेबल से दूसरे टेबल तक घूमती रहती हैं और कार्रवाई सिर्फ़ काग़ज़ों पर होती है। इस बीच दूसरी घटना का इन्तज़ार होता रहता है और इस कार्रवाई की क़ीमत अगली बार हज़ारों टन मलबे के नीचे दबकर दम तोड़ते लोग चुकाते हैं। इस घटना के बाद अब फिर से वही पुरानी कहानी दुहरायी जा रही है, जाँच का आदेश देकर, एक पार्टी के नेता दूसरे पार्टी पर, एक मंत्रालय दूसरे मंत्रालय पर, एक अफ़सर दूसरे अफ़सर पर दोषारोपण करके और मृतक परिवारों और घायलों के लिए मुआवज़े की घोषणा करके अपना पिण्ड छुड़ा रहे हैं। यह बस घोषणा ही बन कर रह जाती है क्योकि पूँजीवादी मशीनरी में इतने छेद हैं कि या तो मुआवज़ा मिलता ही नहीं है या फिर जिनको मिलता भी है उसका बड़ा हिस्सा मंत्रियो, अफ़सरो और बाबुओं की जेब में चला जाता है।

भारत में हर दिन औसतन 10 इमारतें गिर जाती हैं। इन घटनाओं में औसतन 7 लोग रोज़ाना मौत के मुँह में समा जाते हैं। हर साल केवल इमारतों के गिरने से 2700 लोग जान गँवा देते हैं। नेताओं-ठेकेदारों-नौकरशाहों का नापाक गठजोड़ हर रोज देश में दर्जनों मेहनतकशों की मौत का कारण बन रहा है। अभी कुछ दिनों पहले ही मध्यप्रदेश में नकली कफ सीरप पीने से 20 से ज़्यादा बच्चों की मौत हो गई। भारत के सबसे स्वच्छ शहर माने जाने वाले इंदौर के भागीरथपुरा में दूषित पानी पीने से 25 से ज़्यादा लोगों की मौत हो गई। अपराधियों को बचाने के लिए बिना पोस्टमार्टम किये कई शवों का अन्तिम संस्कार कर दिया। जिन लोगों का पोस्टमार्टम हुआ उनकी मौत का कारण पानी के जहरीले होने का तथ्य स्पष्ट हो गया। सरकारी रिकॉर्ड में सिर्फ 4 मौतें दर्ज की गयीं। अब यही खेल इलाहाबाद की इस घटना में भी खेला जा रहा है।

हर बार इन घटनाओं की पड़ताल करते समय सरकार, प्रशासन, ठेकेदार आदि की मिलीभगत से रचे जा रहे मौतों के इस ताण्डव के असली कारणों को छिपा देने की भरसक कोशिश की जाती है। ज़्यादातर मामलों में ये घटनाएँ घटिया निर्माण सामग्री के इस्तेमाल, सुरक्षा मानकों को ताक पर रखकर किये जाने वाले निर्माण कार्यों, ख़राब-रखरखाव, समय-समय पर होने वाले जाँचों को नज़रअन्दाज़ कर देने से होती है। सच्चाई यह है कि जब तक निजी मालिकाने पर आधारित मौजूदा पूँजीवादी लूट की व्यवस्था बनी रहेगी, तब तक आम मेहनतकश लोगों की ज़िन्दगी के साथ ऐसा खिलवाड़ होता रहेगा, उनकी ज़िन्दगी पूँजीवादी व्यवस्था की बलि चढ़ती रहेगी। इसलिए इन घटनाओं के बाद मुआवज़े, उचित जाँच और सुरक्षा और निर्माण के मानकों को लागू करवाने के साथ ही इस मुनाफ़ा आधारित पूँजीवादी व्यवस्था को उखाड़ फेंकने का संघर्ष भी करना होगा।

रायपुर में सेप्टिक टैंक में उतरे 3 सफाईकर्मियों की मौत – ज़िम्मेदार है मुनाफाखोर व्यवस्था

● अजय

18 मार्च। छत्तीसगढ़ की राजधानी रायपुर में एक अस्पताल के सेप्टिक टैंक (सीवरेज) की सफाई के दौरान तीन सफाईकर्मियों की ज़हरीली गैस और दम घुटने से मौत हो गयी। परिजनों के अनुसार एक ठेकेदार के माध्यम से रामकृष्ण केयर अस्पताल में गटर और टैंक साफ करने के लिए मज़दूरों को बुलाया गया था। अस्पताल के पीछे स्थित इस सीवरेज टैंक में उतरते ही ज़हरीली गैस के कारण एक-एक कर तीनों मजदूरों की मौत हो गयी।

मृतकों के नाम गोविंद सेंद्रे, अनमोल मचकन और प्रशांत कुमार बताये जा रहे हैं। इस दर्दनाक घटना के बाद आरोप है कि अस्पताल प्रबंधन ने मज़दूरों की मौत को छिपाने की कोशिश की, ताकि मुआवज़े और कानूनी कार्रवाई से बचा जा सके। परिजनों के विरोध और हंगामे के बाद मामला सामने आया। परिवार के सदस्यों ने यह भी आरोप लगाया कि मृतकों के शवों को एक वैन में डालकर जल्दबाज़ी में हटाया गया।

असल में रायपुर की यह घटना कोई अपवाद नहीं, बल्कि देशभर में सफाईकर्मियों के साथ होने वाली रोज़मर्रा की त्रासदी का हिस्सा है। हम अपने आसपास रोज़ ऐसे मज़दूरों को देखते हैं जो गन्दगी से भरे सीवर और मैनहोल में बिना किसी सुरक्षा उपकरण के उतरते हैं—वह भी महज़ 250–300 रुपये की दिहाड़ी के लिए।

सरकार द्वारा हाल ही में संसद में पिछले नौ सालों में (2017–2026) सफ़ाईकर्मियों की केवल 622 मौतों का आंकड़ा पेश किया गया है, लेकिन वास्तविक संख्या इससे कहीं अधिक होने की संभावना है। सरकारें अपने मज़दूर-विरोधी चेहरे को छिपाने के लिए इन आंकड़ों को कम करके दिखाती हैं। इन मौतों को अक्सर 'हादसा' बताकर ज़िम्मेदारी से पल्ला झाड़ लिया जाता है, जबकि यह दरअसल सुनियोजित जानलेवा लापरवाही का परिणाम है।

दूसरा, सफाईकर्मियों की मौत केवल दुर्घटनाओं तक सीमित नहीं है। पेशागत बीमारियों से होने वाली मौतें भी बड़ी संख्या में होती हैं, जो सरकारी आंकड़ों में दर्ज ही नहीं होतीं। कार्बन मोनोऑक्साइड, हाइड्रोजन सल्फाइड और मिथेन जैसी ज़हरीली गैसों के लगातार सम्पर्क में रहने के कारण ये मज़दूर गम्भीर श्वसन रोगों और अन्य बीमारियों का शिकार होते हैं। अकेले मध्य प्रदेश में, जहाँ के कई शहर साफ-सफाई के मामले में अव्वल आते हैं, हर साल 60 हज़ार से अधिक मज़दूर अपनी कामकाजी उम्र में ही दम तोड़ देते हैं।

आज देश में लाखों सफाई कर्मचारी कच्चे कर्मचारी के तौर पर अथवा ठेका कम्पनियों के गुलामों के तौर पर खट रहे हैं जिन्हें महज़ 8-10 हज़ार रुपये माहवार वेतन के लिए अपनी जान जोखिम में डालनी पड़ती है! सफाई कर्मचारियों का बहुलांश दलित जातियों से आता है। खुद सरकारी आँकड़ों के मुताबिक सफाई कर्मचारियों का तकरीबन 95 प्रतिशत हिस्सा दलित जातियों से आता है! मरने वाले चूँकि समाज के सबसे निचले पायदान पर होते हैं इसलिए सत्ता में बैठे लोगों के कानों पर जूँ तक नहीं रेंगती! लोग मरते रहते हैं और सरकारी नौटंकियाँ चलती रहती हैं। क्या सफाई कर्मचारी की जान की कोई कीमत नहीं है? क्या सफाई कर्मचारी के काम की अहमियत किसी से भी कम है? क्यों सफाईकर्मियों को पर्याप्त सुरक्षा के साधन उपलब्ध नहीं होते? क्या सरकारों को चला रहे स्वघोषित तारणहार अपने सगे सम्बन्धियों या खुद इन हालात में काम करना पसन्द करेंगे? वैसे तो वर्तमान दौर में विज्ञान और तकनोलॉजी ने इतनी तरक़्क़ी कर ली है कि सफाईकर्मियों के शारीरिक श्रम से होने वाले ज़्यादातर काम मशीनों की मदद से हो सकते हैं। लेकिन पूँजीवाद ठहरा आख़िर पूँजीवाद! लागत कम करने के नाम पर और इस प्रकार के कामों में पूँजी निवेश न करने की वजह से इक्कीसवीं सदी में भारत जैसे देश में मज़दूरों से वे काम लिए जा रहे हैं जो किसी भी गरिमामय व्यक्ति को नागवार गुज़रेंगे! उसके ऊपर हमारे देश में जाति व्यवस्था का अस्तित्व ऐसे तमाम कामों को कुछ जातियों के लिए "आरक्षित" करके रख देता है जिस स्थिति का भरपूर फायदा पूँजीवादी व्यवस्था उठाती है।

यूँ तो मोदी जी नौटंकी करने के लिए सफ़ाईकर्मियों के चरण धोने का काम करते हैं, 'स्वच्छ भारत अभियान' के तमाशों में तमाम खाये-पिये-अघाये-मुटियाये भाजपाई हाथों में झाड़ू उठाकर ढोंग करते हुए फोटो खिंचवा लेते हैं, लेकिन इस नौटंकी से आगे असलियत में सफ़ाईकर्मियों के बदतर हालात की किसी को कोई फ़िक्र नहीं है। वहीं सरकार में बैठे खुद को दलितों का "मसीहा" कहने वाले रामदास आठवले, अर्जुन राम मेघवाल जैसे अवसरवादी और हद दर्जे के पतित नेता भी इन असल मुद्दों पर चुप्पी मारे बैठे रहेंगे और एकाध मौक़े पर घड़ियाली आँसू बहाने का काम करेंगे। इन धोखेबाज़ नेताओं से वैसे भी कोई उम्मीद पालना बेमानी है!

ऐसा नहीं है कि सफ़ाईकर्मियों की सुरक्षा के लिए देश में कानून नहीं बने हैं, लेकिन वे केवल कागजों तक सीमित हैं। 1993 और 2013 के कानूनों के तहत मैनुअल स्कैवेंजिंग पर प्रतिबंध है। किसी भी व्यक्ति को सीवर में बिना सुरक्षा के उतारना गैरकानूनी है। यदि विशेष परिस्थिति में उतरना पड़े तो सुरक्षा उपकरण, इंजीनियर की अनुमति और एंबुलेंस जैसी व्यवस्थाएँ अनिवार्य हैं। लेकिन ज़मीनी स्तर पर इन नियमों का खुलेआम उल्लंघन हो रहा है। तकनीकी प्रगति के इस दौर में भी सफ़ाईकर्मियों को बिना सुरक्षा के सीवर में उतरने के लिए मजबूर किया जा रहा है—यह बेहद शर्मनाक है और इस आदमखोर-मुनाफाखोर व्यवस्था के मुँह पर तमाचा है! असल में इस मुनाफाखोर व्यवस्था में ऐसे सभी नियम-कानूनों का ठेकेदार और मालिक तकिया बनाकर सोते हैं!

इन अमानवीय हालात को बदलने के लिए देश की व्यापक जनता को भी सफाईकर्मियों की सुनियोजित हत्याओं पर सरकारों को घेरना चाहिए और इनके अधिकारों के लिए सरकारों पर दबाव बनाना चाहिए। हम सफाईकर्मियों से भी अपील करते हैं कि बिना सुरक्षा के इन्तज़ाम के किसी भी हालत में नाले, सीवर या सेप्टिक टैंक में न उतरें। रायपुर में हुए इस जघन्य हादसे का हम कड़ा प्रतिवाद करते हैं और सरकार से माँग करते हैं :-

तीनों सफाईकर्मियों की मौत के लिए ज़िम्मेदार ठेकेदार और अस्पताल प्रबंधन पर सख्त कार्रवाई की जाये और इनके टेण्डर रद्द किये जाएँ।

सफाई कार्य का पूर्ण मशीनीकरण किया जाये और हाथ से सफाई पर तत्काल प्रतिबंध लागू किया जाए।

सभी सफाईकर्मियों को पर्याप्त सुरक्षा उपकरण और उचित वर्दी उपलब्ध करायी जाए।

मृतकों के परिवारों को उचित मुआवज़ा और प्रत्येक परिवार के एक सदस्य को सरकारी नौकरी दी जाए।

सभी सफाईकर्मियों को स्थायी (पक्का) किया जाए और 'स्वच्छ भारत अभियान' के बजट का बड़ा हिस्सा उनके हालात सुधारने में लगाया जाए।

दिल्ली के करावल नगर में भगतसिंह के सपनों और आदर्शों को समर्पित 'शहीद भगतसिंह युवा केन्द्र' की शुरुआत

23 मार्च 2026, करावल नगर (दिल्ली) ; भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु के 95वें शहादत दिवस के अवसर पर 'शहीद भगतसिंह युवा केन्द्र' की शुरुआत की गयी। केन्द्र का उद्घाटन कार्यक्रम रविवार, 22 मार्च को आयोजित किया गया। करावल नगर की जनता के साथ-साथ शहर के न्यायशील नागरिकों और छात्रों ने भी बड़ी संख्या में कार्यक्रम में भागीदारी की। मुख्य अतिथि के तौर पर प्रसिद्ध कवियत्री और राजनीतिक कार्यकर्ता कात्यायनी और वरिष्ठ पत्रकार व कार्यकर्ता सत्यम शामिल हुए। बच्चों और नौजवानों ने भी बढ़-चढ़ कर कार्यक्रम में भागीदारी की। दिल्ली के बुराड़ी स्थित सावित्रीबाई फुले-फ़ातिमा शेख़ पुस्तकालय के नौजवानों और बच्चों की टोली भी कार्यक्रम में शिरकत करने पहुँची।

कार्यक्रम की शुरुआत प्रसिद्ध क्रान्तिकारी रॉक बैण्ड 'अनुष्टुप' द्वारा प्रस्तुत 'मेरा रंग दे बसंती चोला' गीत से की गयी। गीत, नारों और शुरुआती बात के बाद रिबन काट कर केन्द्र का उद्घाटन किया गया। गगनभेदी नारों के साथ शहीदों की तस्वीरों पर माल्यार्पण किया गया। बुराड़ी पुस्तकालय से आये बच्चों और नौजवान दोस्तों ने भी इस मौके पर 'आ रे नौजवान' गीत की प्रस्तुति दी।

युवा केन्द्र के महत्व और उसकी निर्माण यात्रा पर सनी ने बात रखी। उन्होंने कहा कि आज के समय में जब क्रान्तिकारियों के सपनों पर धूल की चादर डाली जा रही है, ऐसे संस्थानों का महत्व पहले से कहीं अधिक बढ़ गया है। नौजवान भारत सभा की विरासत को 100 साल पूरे होने के इस ऐतिहासिक घड़ी में इस केन्द्र की शुरुआत इस बात का प्रतीक है कि जो मशाल भगतसिंह और उनके साथियों ने जलायी थी वो अभी भी बुझी नहीं है। यह केन्द्र शहीदों के सपनों को पूरा करने की दिशा में एक मील का पत्थर साबित होगा। साथ ही, इस शुरुआत से प्रेरणा लेते हुए जगह-जगह ऐसे संस्थानो के निर्माण की पहल ली जायेगी। आगे सनी ने बात रखते हुए बताया कि कैसे आज से क़रीब दो दशक पहले जब उन्हें इसी स्थान पर शुरू किये गये शहीद भगतसिंह पुस्तकालय के बारे मे पता चला तो वह और उन जैसे ही कई छात्रों ने मिल कर इस मुहिम से जुड़कर इसे आगे बढ़ाने का फैसला लिया था। पुस्तकालय एक ऐसा केन्द्र बनता चला गया जहाँ केवल विचारों का आदान-प्रदान ही नहीं होता था बल्कि वहाँ से पूरे इलाके में लोगों की ज़िन्दगी से जुड़ी समस्याओं के समाधान के लिये पहल ली जाती थी। आज जब हम इस यात्रा के एक नये चरण में प्रवेश कर रहे हैं तो यह भी यहाँ रहने वाले लोगों के संघर्षों का ही परिणाम है। इस संस्थान की एक-एक ईंट जनसहयोग से लगी है। मौजूदा फ़ासीवादी दौर में जब लोगों के सामने नकली दुश्मन खड़ा कर उन्हें असली मुद्दों से गुमराह किया जा रहा है, उन्हें अपने ही हितों के ख़िलाफ़ खड़ा किया जा रहा है तब इस तरह के केन्द्रों की ज़रूरत पहले से कहीं अधिक हो जाती है। सभा में आगे बच्चों ने सामूहिक गीत की प्रस्तुति दी। 'हम मेहनत करने वाले सब एक हैं' गीत के ज़रिये हर क़िस्म के भेद मिटा कर सभी मेहनतकश लोगों को एकजुट होने का संदेश दिया।

लखनऊ से आयी कवयित्री और ऐक्टिविस्ट कात्यायनी ने कहा कि आज यह संस्थान निर्माण और इसके उद्घाटन का दिन हमारे सपनों के साकार होने का दिन है। पिछले 10 वर्षों में दिल्ली जैसे शहर में तमाम बौद्धिक व सांस्कृतिक स्थानों व संस्थाओं को फ़ासीवादी मोदी सरकार ने निशाना बनाया है। दिल्ली जैसा शहर ऐसे 'स्पेसों' के लिए जाना जाता था लेकिन ऐसी जगहें व 'स्पेस' आज लुप्तप्राय हो चुके हैं। ऐसी जगहें विचारों के आदान-प्रदान, उनके उत्पादक व रचनात्मक घर्षण और जनवादी व प्रगतिशील समुदाय के लोगों के मिलने-जुलने व बहस-मुबाहिसे के केन्द्र हुआ करते थे।

ऐसे तमाम 'स्पेस' ख़त्म करने का अर्थ है ऐसे विचारों का गला घोंटना और उनके वाहकों की बौद्धिक हत्या कर देना। चूँकि ऐसी जगहें स्वतन्त्रता, जनवाद, सच्चे सेक्युलरिज़्म, समानता और आलोचनात्मकता के विचारों के पनपने की ज़मीन रही हैं, ठीक इसीलिए मौजूदा फ़ासीवादी निज़ाम ऐसी जगहों को समाप्त करने पर तुला हुआ है। इसलिए मौजूदा दौर में हमें ही इस तरह के केन्द्रों के निर्माण का काम हाथ में लेना होगा। भगतसिंह युवा केन्द्र भी ऐसा ही एक संस्थान है। यह संस्थान प्रगतिशील विचारों को लोगों तक ले जाने के लिए ज़रूरी प्रकाशन संस्थानों और वैकल्पिक मीडिया खड़ा करने के व्यापक कार्यभार का हिस्सा भी है। चारों तरफ़ फैले फ़ासीवादी ज़हर के ख़िलाफ़ संघर्ष आज ऐसे सामाजिक-सांस्कृतिक मुहिम के बिना सम्भव नहीं हैं। ये संस्थान नया समाज बनाने के सपने को संवेग देने का काम करेंगे। अंत में उन्होंने कहा कि आज के दौर में फ़ासीवाद-विरोधी कार्यभारों में यह एक अहम कार्यभार है और फ़ासीवादी ताक़तों को तभी पछाड़ा जा सकता है जब हम तृणमूल स्तर पर ऐसे संस्थानों के ज़रिये लोगों तक सही विचार ले कर जाये।

इसके बाद 'अनुष्टुप' के साथियों ने प्रस्तुति दी। हबीब ज़ालिब का गीत 'दस्तूर', फ़ैज़ द्वारा रचित 'चलो फिर से मुस्कुराएँ' और शशिप्रकाश द्वारा लिखा गया गीत 'शहीदों के लिए' गाये गये।

सभा में आगे वरिष्ठ पत्रकार और राजनीतिक कार्यकर्ता सत्यम ने बात रखी। उन्होंने कहा कि आज़ादी के बाद से आज तक हमने जो देखा उससे यह और साफ़ हो गया है कि कोई भी बुनियादी बदलाव केवल और केवल

(पेज 8 पर जारी)

गैस-सिलेण्डर के बढ़ते संकट और मोदी सरकार की चुप्पी के ख़िलाफ़ देश भर में आक्रोश प्रदर्शन!

28 फ़रवरी को साम्राज्यवादी अमेरिका और ज़ायनवादी इज़रायल द्वारा ईरान की राष्ट्रीय सम्प्रभुता की धज्जियाँ उड़ाते हुए किये गये हमले के बाद पूरी दुनिया ऊर्जा संकट से जूझ रही है। भारत की आम मेहनतकश जनता को भी रसोई गैस सिलेण्डर की भयंकर कमी का सामना करना पड़ रहा है।

भारत में यह संकट मोदी सरकार की ग़लत नीतियों और घोर लापरवाही के कारण पैदा हुआ है। फ़ासिस्ट मोदी सरकार की इस चुप्पी, बदइन्तज़ामी और अमेरिका-इज़रायल के साम्राज्यवादी मंसूबों के ख़िलाफ़ देश के कई राज्यों में भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) समेत कई छात्र, युवा, नागरिक व मज़दूर संगठनों द्वारा प्रदर्शन किया गया। ये प्रदर्शन दिल्ली, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, तेलंगाना से लेकर हरियाणा, उत्तरप्रदेश, बिहार आदि राज्यों में हुए।

दिल्ली के जन्तर मन्तर पर आयोजित आक्रोश प्रदर्शन में भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI), नौजवान भारत सभा, दिशा छात्र संगठन, मज़दूर बिगुल के वक्ताओं ने सभा को सम्बोधित किया। शाहबाद डेयरी में भी पर्चा वितरण कर महाराणा प्रताप चौक पर सरकार की बदइन्तज़ामी के ख़िलाफ़ विरोध प्रदर्शन किया गया।

बिगुल संवाददाता से बात करते हुए लोगों ने बताया कि एक तो गैस सिलेण्डर जल्दी मिल नहीं रहा है और अगर मिल भी रहा है तो 300-400 रुपये किलो, दूसरी तरफ़ लकड़ियों के दाम भी बढ़ गये हैं। 8 से 10 हज़ार रुपये महीने कमाने वालों के लिये घर चलाना मुश्किल हो गया है। प्रदर्शन में आये लोगों ने बताया कि एलपीजी गैस और पेट्रोल-डीज़ल महँगा होने पर अन्य वस्तुएँ भी महँगी हो रही हैं। गैस सिलेण्डर न मिलने के कारण खाने-पीने की छोटी दुकानें बन्द हो गयी हैं। हमेशा की तरह मोदी सरकार ने तेल और गैस के संकट से निपटने के लिए कोई योजना नहीं बनायी। जिस तरह कोरोना काल में इस सरकार ने संकट से निपटने के लिए कोई तैयारी नहीं की थी और लोगों को मरने के लिए छोड़ दिया था, ठीक उसी तरह आज भी गैस संकट से उबरने की कोई पूर्वयोजना मोदी सरकार ने नहीं बनायी और लोग एक बार फिर लापरवाही की मार झेल रहे हैं।

गैस-सिलेण्डर की माँग करने और सरकार की बदइन्तज़ामी के ख़िलाफ़ बोलने पर मोदी सरकार इस संकट के वक़्त भी लोगों का दमन करने से नहीं चूक रही है। मुम्बई के मानखुर्द स्थित संविधान चौक पर एलपीजी की माँग करते हुए शान्तिपूर्ण प्रदर्शन कर रहे RWPI कार्यकर्ताओं और आम नागरिकों पर महाराष्ट्र पुलिस ने लाठीचार्ज किया। महाराष्ट्र पुलिस ने बर्बरता की हदें पार करते हुए नाबालिग बच्चों और गर्भवती महिला तक को नहीं बख़्शा। RWPI के कार्यकर्ताओं को हिरासत में लेकर उनपर आपराधिक मामला दर्ज कर दिया गया। स्थानीय लोगों ने थाने का घेराव कर हिरासत में लिये गये अपने साथियों को छुड़ाया और पुलिसिया दमन के ख़िलाफ़ रैली निकाली। यह दिखाता है कि फ़ासिस्ट सत्ता जनता की एकजुटता और विरोध की आवाज़ से कितना डरती है। दमन के बावजूद भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी ने महाराष्ट्र के पुणे और अहिल्यानगर में भी प्रदर्शन किया।

आन्ध्र प्रदेश के विशाखापत्तनम और विजयवाड़ा में नौजवान भारत सभा की तरफ़ से विरोध प्रदर्शन किया गया। कार्यकर्ताओं ने कहा कि साम्राज्यवादी युद्ध की मार आम जनता झेल रही है। ख़बरों के मुताबिक़ गैस के दाम बढ़ने से हर परिवार पर हर महीने कम से कम 700 रुपये तक का बोझ बढ़ जाएगा। हज़ारों करोड़ का बोझ अकेले आन्ध्र प्रदेश की जनता पर है। विश्व गुरु का होने का ढोल पीटने वाली मोदी सरकार इस पूरे संकट पर ठोस क़दम उठाने के बजाय इस संकट से ही इनकार कर रही है, जबकि सच्चाई यह है कि गैस एजेंसियों और सीएनजी पम्पों के बाहर लम्बी-लम्बी लाइनें लगी हैं। कई-कई घण्टों तक इन्तज़ार करने के बाद भी लोगों को सिलेण्डर नहीं मिल रहा। हर बीतते दिन के साथ यह संकट और बढ़ता जा रहा है।

बड़े पैमाने पर सिलेण्डर की कालाबाज़ारी शुरू हो गयी है। अमीर तो पैसे के दम पर ब्लैक में सिलेण्डर हासिल कर ले रहे हैं, लेकिन ग़रीबों के घरों में चूल्हा जलने पर भी संकट आ गया है। प्रवासी मज़दूरों-मेहनतकशों की बड़ी आबादी के पास गैस कनेक्शन नहीं है, इसलिए वे छोटे सिलेण्डरों का इस्तेमाल करते हैं। अब उन्हें मजबूरन 300-400 रुपये किलो गैस ख़रीदना पड़ रहा है। कुछ मज़दूर बस्तियों से लोग पलायन करने को मजबूर हैं। 7 मार्च को सरकार ने घरेलू एलपीजी सिलेण्डर में 60 रुपये और कमर्शियल सिलेण्डर में 115 रुपये बढ़ा दिये।

तेलंगाना, बिहार, हरियाणा और उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद, बनारस, गोरखपुर, मऊ और लखनऊ में पर्चा वितरण, रैली और सभाएँ की गयीं।

जनवरी के महीने में ही यह साफ़ हो गया था कि अमेरिका और इज़रायल ईरान पर कभी भी हमला कर सकते हैं और उसका असर हमारे देश में गैस और पेट्रोल की भारी किल्लत के रूप में सामने आयेगा। इसके बावजूद इस संकट से निपटने के लिए मोदी सरकार कोई योजना बनाने की बजाय इज़रायल से गलबहियाँ करने में मगन रही और एक बार फिर जनता को मरने के लिए छोड़ दिया। इस संकट के दौर में तेल को संरक्षित करने के बजाय सरकार तेल निर्यात कर रही है ताकि रिलायंस जैसी कम्पनियों के मुनाफ़े में कोई रुकावट ना आये, भले ही इसका ख़ामियाजा देश की आम जनता को भुगतना पड़े। 56 इंच का सीना फुलाने वाला प्रधानमंत्री अमेरिका और इज़रायल के हमले पर कोई पक्ष लेने के बजाय चुप्पी साधकर बैठा है और चुनावी रैलियाँ करने में व्यस्त है। अम्बानी-अडानी जैसे पूँजीपतियों के मुनाफ़े की दर को बरकरार रखने के लिए जनता को मरता हुआ छोड़ धीरज, संयम और शान्ति बरतने की सलाह दे रहा है।

मेहनतकश दोस्तो, हमें पिछले अनुभवों से सबक लेते हुए इस संकट को चुपचाप सहते रहने के बजाय सरकार पर दबाव बनाना होगा कि वह इस साम्राज्यवादी युद्ध में सही पक्ष ले और अमेरिका और इज़रायल पर युद्ध ख़त्म करने के लिए दबाव बनाये। इसके साथ ही देश की आम जनता तक सस्ते दरों पर गैस-सिलेण्डर पहुँच पाये, यह सुनिश्चित करें और इसकी कालाबाज़ारी पर रोक लगाये। इसके अलावा, पेट्रोल व डीज़ल पर लगाये गये भारी टैक्सों को तत्काल कम किया जाये।

– बिगुल संवाददाता

दिल्ली में 'शहीद भगतसिंह युवा केन्द्र' की शुरुआत

(पेज 7 से आगे)

इंक़लाब के ज़रिये ही आ सकता है। भगतसिंह न कहा था, "इंक़लाब की तलवार विचारों की सान पर तेज़ होती है"। युवा केन्द्र जैसे संस्थान ही वह सान है जहाँ इंक़लाब की तलवार की धार तेज़ की जा सकती है। उन्होंने कहा कि आज मीडिया समाज को बेहतर दिशा में ले जाने की जगह उसे तबाहो-बर्बाद करने के लिये काम कर रहा है। झूठी ख़बरों के अलावा फ़िल्मों और अन्य सांस्कृतिक माध्यमों के ज़रिये भी लोगों को गुमराह किया जा रहा है। ऐसे में जनवादी स्पेसों का निर्माण और उनके माध्यम से जन-जन तक सच का प्रचार हमारा महत्वपूर्ण कार्यभार बनता है। आख़िर में सत्यम ने क्रान्तिकारी कवि पाश को उनके शहादत दिवस (23 मार्च) पर याद करते हुए उनकी सुप्रसिद्ध कविता 'सबसे ख़तरनाक होता है हमारे सपनों का मर जाना' का अंश पढ़ा और कहा कि आज अँधेरे के इस दौर मे हमारे सपने ही हैं जो हमें जीने की और आगे बढ़ने की प्रेरणा देते हैं। यह केन्द्र भी हमारे सपनों को साकार करने की ओर बढ़ाया गया एक क़दम है।

नौजवान भारत सभा से जुड़े रहे साथी योगेश ने बात रखी। उन्होंने कहा कि यह केन्द्र जनसहयोग के दम पर खड़ा किया गया है। नौभास लम्बे से इलाके में जनजीवन से जुड़े मुद्दों को लेकर संघर्षरत रहा है। आगे योगेश ने केन्द्र की पूरी परियोजना पर बात रखी। उन्होंने बताया कि इस केन्द्र में कुल चार मंज़िलों के निर्माण की योजना है। भूतल पर स्थित सभागार व पुस्तकालय के साथ ही ऊपर 'आज़ाद यूथ क्लब' के तहत जिम की शुरुआत की जायेगी। सबसे ऊपर एक ओपेन एयर थिएटर का निर्माण भी किया जाना है। 'आज़ाद यूथ क्लब' के तहत केन्द्र में नियमित तौर पर विभिन्न खेल-कूद की गतिविधियों का भी आयोजन किया जायेगा। साथ ही केन्द्र में नियमित तौर पर देश और दुनिया के बेहतरीन सिनेमा को दिखाया जायेगा। 'शिक्षा सहायता मण्डल' तथा नियमित तौर पर मेडिकल कैम्प का भी आयोजन किया जायेगा। केन्द्र में जन सहायता व शिकायत केन्द्र का भी संचालन किया जायेगा।

केन्द्र के उद्घाटन के मौके पर आयोजित सभा के अन्त में बच्चों को पुरस्कृत किया गया। मालूम हो कि उद्घाटन से पहले तीन दिनों तक शतरंज, क्विज़ तथा चित्रकला प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया था। हर प्रतियोगिता में प्रथम, द्वितीय व तृतीय स्थान पाने वाले बच्चों के साथ ही सभी प्रतिभागियों को प्रशस्ति पत्र, क्रान्तिकारियों की पेंटिंग और 'कोंपल' बाल पत्रिका भेंट की गयी।

'अनुष्टुप' द्वारा संगीतबद्ध और आशु मिश्रा द्वारा लिखित सुप्रसिद्ध गीत 'कहो नरेंदर मज़ा आ रहा', जो हाल ही में पूरे देश में ही काफी चर्चा में रहा है, के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ और लोगों का आह्वान किया गया कि देशस्तर पर इस तरह के केन्द्रों के निर्माण के लिए बढ़-चढ़ कर आगे आयें।

पूँजीवादी व्यवस्था और युवा आबादी को अनियमित व अनौपचारिक क्षेत्र में धकेले जाने की बाध्यता

● प्रसेन

अभी हाल ही में चेन्नई स्थित 'ग्रेट लेक्स इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेण्ट' द्वारा 'भारत में काम करने वाले युवाओं' का अध्ययन किया गया। इस अध्ययन में पाया गया कि 20-29 वर्ष की आयु वर्ग के केवल 47 प्रतिशत नौजवान ही तनख़्वाह-शुदा रोज़गार में हैं। शहरी क्षेत्रों में यह आँकड़ा 48.8 प्रतिशत है, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में यह आँकड़ा 45.6 प्रतिशत है। इस अध्ययन से पता चलता है कि अनौपचारिक रोज़गार ही अधिकांश लोगों के लिए रोज़गार का मुख्य ज़रिया बना हुआ है। केवल 9.5 प्रतिशत युवा औपचारिक उद्यमों में काम करते हैं, जबकि 37.2 प्रतिशत अनौपचारिक उद्यमों में कार्यरत हैं। ग्रामीण भारत में लगभग 85 प्रतिशत कामकाजी वयस्क अनौपचारिक उद्यमों में काम करते हैं।

रिपोर्ट के अनुसार, उच्च शिक्षा प्राप्त युवाओं का 22.5 प्रतिशत औपचारिक उद्यमों में कार्यरत है जबकि 23.9 प्रतिशत अनौपचारिक उद्यमों में। यह आँकड़ा औपचारिक क्षेत्र में रोज़गार के सीमित देशव्यापी विस्तार का संकेत देता है। इस रिपोर्ट के मुताबिक़ औपचारिक नौकरियों तक पहुँच भी लिंग और स्थान के आधार पर काफी भिन्न होती है। शहरी क्षेत्रों में लगभग चार में से एक युवा पुरुष औपचारिक उद्यमों में काम करता है, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में यह आँकड़ा दस में से एक है। महिलाओं में औपचारिक रोज़गार की दर और भी कम है, ग्रामीण क्षेत्रों में केवल 2.3 प्रतिशत और शहरी क्षेत्रों में 9.8 प्रतिशत युवा महिलाएँ ही औपचारिक रोज़गार में शामिल हैं। रोज़गार के परिणाम राज्यों में व्यापक रूप से भिन्न हैं, जो रोज़गार सृजन और श्रम बाज़ार संरचनाओं में अन्तर को दर्शाते हैं। युवा रोज़गार गुजरात में 58.1 प्रतिशत से लेकर बिहार में लगभग 37.1 प्रतिशत तक है, जो युवा श्रमिकों को समायोजित करने की राज्यों की क्षमता में बड़े अन्तर को इंगित करता है। केवल आठ राज्यों, जिनमें गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब, कर्नाटक, दिल्ली, तमिलनाडु, तेलंगाना और हरियाणा शामिल हैं, में आधे से अधिक युवा वेतन-सहित रोज़गार में हैं।

यह रिपोर्ट यह भी बताती है कि कार्यस्थल और आवास के बीच संरचनात्मक स्थानिक असन्तुलन होने के चलते आवागमन में लगने वाला समय काम के बोझ को बढ़ा देता है। आने-जाने का समय शामिल करने पर काम पर आठ घण्टे से अधिक समय बिताने वाले औपचारिक उद्यमों के कर्मचारियों का हिस्सा दोगुने से भी अधिक, यानी 26.7 प्रतिशत से बढ़कर 63.2 प्रतिशत हो जाता है।

इस रिपोर्ट से तीन बातें बहुत स्पष्ट हैं। पहला, युवा आबादी के लिए पक्के व नियमित रोज़गार के अवसर तेज़ी से घटते जा रहे हैं। युवाओं को अनियमित और अनौपचारिक क्षेत्रों में काम के लिए धकेला जा रहा है। दूसरे, देश में अलग-अलग राज्यों के स्तर पर रोज़गार सृजन में बहुत असमानता है। तीसरे, कार्यस्थल तथा रिहाइश में दूरी के चलते आवागमन काम के समय में अतिरिक्त समय का बोझ बढ़ा देता है।

वास्तव में, श्रमशक्ति का अनौपचारिकीकरण पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली के विकास का अनिवार्य विशिष्ट चरित्र है। अनौपचारिकीकरण की प्रक्रिया के दो अंग हैं। पहला, पूरी अर्थव्यवस्था में एक विशालकाय अनौपचारिक क्षेत्र का पैदा होना। इसका अर्थ है विशाल संख्या में ऐसी औद्योगिक इकाइयों का पैदा होना जो किसी भी प्रकार के क़ानून या सरकार द्वारा लागू किसी भी विनियमन के अन्तर्गत नहीं आतीं। इनमें घरों में उप-ठेकाकरण के तहत होने वाले काम से लेकर, दस्तकारी उद्योग, वर्कशॉप, छोटे-छोटे कारख़ाने तक शामिल हैं। इसमें काम करने वाली श्रमिक आबादी का 98 प्रतिशत हिस्सा ऐसा है जिसके पास निश्चित मज़दूरी वाला पक्का नियमित रोज़गार नहीं है और किसी भी प्रकार की क़ानूनी सुरक्षा उन्हें हासिल नहीं है।

अनौपचारिकीकरण की प्रक्रिया का दूसरा अंग है, संगठित और असंगठित, दोनों ही क्षेत्र में कार्यरत कार्यशक्ति का अनौपचारिकीकरण। यानी कि जो आबादी संगठित क्षेत्र में पक्के रोज़गार और नियमित पक्के वेतन के साथ काम कर रही थी, उसके आकार को ठेकाकरण-उपठेकाकरण और छँटनी के ज़रिये तेज़ी से छोटा करना। यानी संगठित क्षेत्र में भी अनौपचारिक क़रार के तहत काम करने वाली आबादी के हिस्से को लगातार बढ़ाना। देश के सरकारी विभागों में ख़ाली पदों को ख़त्म कर, बचे पदों पर नियमित रोज़गार की जगह ठेके-संविदा की व्यवस्था इसी प्रक्रिया का हिस्सा है।

विकसित होते पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली के इस विशिष्ट चरित्र को मार्क्स ने अपने समय में समझ लिया था। मार्क्स ने 'पूँजी' खण्ड-1 के 'पूँजी का संचय' अध्याय में 'सापेक्षिक अतिरिक्त आबादी के निर्माण' के बारे में लिखा है। इस विश्लेषण के ज़रिये हम अनौपचारिकीकरण की वर्तमान प्रक्रिया को समझ सकते हैं। मार्क्स लिखते हैं :

> "...संचय की प्रगति के साथ-साथ परिवर्तनशील पूँजी के साथ स्थिर पूँजी का अनुपात बदल जाता है। शुरू में यदि, मान लीजिए 1:1 का अनुपात था, तो अब उत्तरोत्तर 2:1,3:1,4:1,5:1,7:1 इत्यादि का अनुपात होता जाता है, जिसका नतीजा यह होता है कि जैसे-जैसे पूँजी में वृद्धि होती जाती है, वैसे-वैसे उसके कुल मूल्य के 1/2 भाग के बजाय केवल 1/3, 1/4, 1/5, 1/6, 1/7 इत्यादि भाग ही श्रमशक्ति में रूपान्तरित किये जाते हैं और दूसरी ओर 2/3, 3/4, 4/5, 5/6, 6/7 इत्यादि भाग उत्पादन के साधनों में बदल दिये जाते है। चूँकि श्रम की माँग कुल पूँजी की मात्रा से नहीं, बल्कि केवल उसके परिवर्तनशील संघटक की मात्रा से निर्धारित होती है, इसलिए कुल पूँजी के बढ़ने के साथ-साथ यह माँग उसके अनुपात में नहीं बढ़ती, जैसा कि हमने पहले मान रखा था, बल्कि वह उत्तरोत्तर घटती जाती है।...वास्तव में पूँजीवादी संचय ख़ुद ही लगातार मज़दूरों की एक अपेक्षाकृत अनावश्यक संख्या का उत्पादन करता रहता है, अर्थात पूँजी के आत्मविस्तार की औसत आवश्यकताओं के लिए जो आबादी पर्याप्त होती है, पूँजीवादी संचय उससे बड़ी आबादी का, जो इस कारण बेशी आबादी होती है, उत्पादन करता रहता है, और यह उत्पादन वह स्वयं अपनी ऊर्जा और विस्तार के प्रत्यक्ष अनुपात में करता है।"

पूँजी संचय की प्रक्रिया में पैदा हुई बेशी आबादी पलटकर पूँजी संचय की ज़रूरी शर्त बन जाती है। या कहा जाये कि बेरोज़गारों की आरक्षित सेना पूँजी के विस्तार के लिए आवश्यक हो जाती है। मार्क्स आगे लिखते हैं :

> "परन्तु यदि श्रमजीवियों की बेशी आबादी पूँजीवादी आधार पर धन के संचय अथवा विकास की अनिवार्य उपज है, तो यह बेशी आबादी उलटकर पूँजीवादी संचय का लीवर भी बन जाती है – नहीं, बल्कि कहना चाहिए कि वह उत्पादन की पूँजीवादी प्रणाली के अस्तित्व की एक आवश्यक शर्त बन जाती है। यह बेशी आबादी एक औद्योगिक रिज़र्व सेना का रूप धारण कर लेती है, जिस पर पूँजी का ऐसा परमाधिकार होता है कि मानो स्वयं पूँजी ने ही उसे अपने ख़र्चे से पाल-पोसकर तैयार किया हो। आबादी में सचमुच कितनी वृद्धि होती है, उसकी सीमाओं से स्वतन्त्र होकर यह बेशी आबादी पूँजी के आत्मविस्तार की बदलती हुई आवश्यकताओं के लिए मानव-सामग्री की एक ऐसी राशि का सृजन कर देती है, जिसका सदैव ही शोषण किया जा सकता है।"

बेशी आबादी की बढ़ोत्तरी जहाँ एक तरफ़ पलटकर पूँजी संचय की शर्त बन जाती है वहीं दूसरी ओर प्रतियोगिता के द्वारा यह आबादी कार्यरत आबादी पर चुपचाप पूँजी का हुक्म बजाते रहने का दबाव डालती है। मार्क्स आगे लिखते हैं :

> "मज़दूर वर्ग का काम पर लगा हुआ भाग जो अत्यधिक श्रम करता है, उससे रिज़र्व भाग की संख्या और बढ़ जाती है; दूसरी ओर, रिज़र्व भाग अपनी प्रतिस्पर्धा के द्वारा नौकरी में लगे हुए भाग पर अब पहले से अधिक दबाव डालता है, और उसके फलस्वरूप इस भाग को अत्यधिक श्रम करने तथा चुपचाप पूँजी का हुक्म बजाने के लिए मजबूर कर देता है। मज़दूर वर्ग के एक भाग से अत्यधिक काम कराके दूसरे भाग को ज़बरदस्ती बेकार बनाये रखना और एक भाग को ज़बरदस्ती ख़ाली हाथ बैठाकर दूसरे भाग से अत्यधिक काम लेना – यह अलग-अलग पूँजीपतियों का धन बढ़ाने का साधन बन जाता है।"

मार्क्स के उपरोक्त विश्लेषण की रोशनी में देखा जाये तो वर्तमान समय में अनौपचारिकीकरण को और युवा आबादी को अनौपचारिक क्षेत्र में धकेलने की परिघटना को समझा जा सकता है। वर्तमान वैश्विक दीर्घकालिक मन्दी के दौर से भारत का पूँजीपति वर्ग भी गुज़र रहा है। पूँजी के आवयविक संघटन में वृद्धि के चलते यहाँ भी एक बड़ी आबादी सापेक्षिक बेशी आबादी में तब्दील की जा चुकी है। एक तरफ़ बड़ी आबादी ख़ाली बैठी है, उसके लिए काम नहीं है। दूसरी तरफ़ कार्यरत आबादी के काम के घण्टे लगातार बढ़ाये जा रहे हैं। सापेक्षिक बेशी आबादी के चलते जो आबादी कार्यरत है वो काम के छिनने, दूसरे शब्दों में कहें तो बेशी आबादी में धकेल दिये जाने के डर से शोषण सहते हुए भी चुपचाप काम करते रहने के लिए बाध्य है। दूसरी तरफ़ बेशी आबादी पूँजीपतियों की ज़रूरत पड़ने पर बहुत कम दाम में अपनी श्रमशक्ति बेचने के लिए तैयार/बाध्य है। मोदी सरकार द्वारा लाये गये 'चार लेबर कोड' न केवल हर क्षेत्र के कामगारों को पहले मिलने वाली या काग़ज़ों पर मौजूद सामाजिक सुरक्षा, न्यूनतम मज़दूरी, यूनियन बनाने के अधिकारों पर हमला है बल्कि इसमें काम के घण्टों को क़ानूनी तौर पर बढ़ाने का प्रावधान भी है। नियमित प्रकृति के कामों में भी ठेका, संविदा की व्यवस्था है या लायी जा रही है। जनता के ख़ून-पसीने की कमाई से खड़े सरकारी विभागों को पूँजीपतियों को बेचा जा रहा है या ठेके-संविदा के हवाले किया जा रहा है। पूँजीपति वर्ग के मुनाफ़े की दर को बरक़रार रखने/बढ़ाने के लिए पूरी दुनिया में पूँजीपति वर्ग के हित में 'राज्य' का हस्तक्षेप बढ़ा है और इस काम को अंजाम देने के लिए धुर दक्षिणपन्थी/फ़ासीवादी ताक़तों का पूरी दुनिया में ही उभार देखने को मिल रहा है और कई देशों में वे सत्ता में विराजमान भी हैं।

उपरोक्त रिपोर्ट में देश में राज्य स्तर पर रोज़गार सृजन में असमानता और कार्यस्थल तथा रिहाइश में दूरी के कारण अतिरिक्त समय के बोझ की जो बात आयी है, वह भी पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली की चारित्रिक विशेषता है। पूँजीवादी व्यवस्था में मुनाफ़े की होड़ में जिस तरह से बहुत से छोटे-छोटे पूँजीपतियों के हाथ से पूँजी निकलकर मुट्ठीभर पूँजीपतियों के हाथों में केन्द्रित होने की प्रक्रिया चलती है उसी तरह भौगोलिक तौर पर भी पूँजी का केन्द्रण होता रहता है। पूँजी निवेश की सहूलियत के मुताबिक़ कुछ शहर/राज्य उद्योगों के केन्द्र के तौर पर विकसित होते जाते हैं। गाँवों और शहरों में अन्तर बढ़ता जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में पूँजीवादी विकास से ग्रामीण आबादी का ध्रुवीकरण तेज़ होता जाता है। एक बड़ी आबादी सापेक्षिक बेशी आबादी में तब्दील हो जाती है जिसका एक हिस्सा काम-काज की तलाश में शहरों की तरफ़ पलायन करता है। मज़दूरों का बड़ा हिस्सा कारख़ानों के इर्द-गिर्द नारकीय स्थिति में रहने के लिए मजबूर होता है या अपनी श्रम-शक्ति की बेहतर क़ीमत के लिए एक कोने से दूसरे कोने भटकता रहता है। भारत जैसे देशों में आज़ादी के बाद पूँजीवादी विकास के प्रारम्भिक दौर में पब्लिक सेक्टरों में या संगठित क्षेत्रों में कार्यरत आबादी के लिए कई बार सस्ती दरों पर रिहाइश का इन्तज़ाम कार्यक्षेत्र के आस-पास किया जाता था। लेकिन नवउदारवादी दौर के आगमन के बाद और पूँजीवाद के वर्तमान दीर्घकालिक आर्थिक संकट के दौर में पूँजीपति वर्ग या सरकार ने इससे पल्ला झाड़ लिया है। ऐसे में इन क्षेत्रों में कार्यरत आबादी अपनी क्षमता और उपलब्धता के मुताबिक़ अपने रहने की जगह चुनने के लिए बाध्य होती है न कि कार्यस्थल से नज़दीकी के हिसाब से।

इस विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि उपरोक्त रिपोर्ट में युवा आबादी के अनौपचारिक क्षेत्र में काम की बाध्यता, राज्यवार रोज़गार के अवसरों की असमानता और कार्यस्थल से दूरी की वजह से काम के समय पर अतिरिक्त बोझ की जो बात सामने आयी है वह कोई आकस्मिक परिघटना या अनहोनी नहीं है, बल्कि मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था की अनिवार्य उपज है। इसी तरह, ये हालात किन्हीं सुधारात्मक उपायों से किसी भी तरह से सुधरने वाले नहीं हैं। पूँजीवादी व्यवस्था का मौजूदा दीर्घकालिक संकट उतने भी "सुधार" की गुंजाइश नहीं छोड़ता जो पहले एक हद तक सम्भव थे, या हो सकते थे।

निश्चित तौर पर मौजूदा व्यवस्था में हर जगह 'सबके लिए पक्के रोज़गार' की माँग एक बेहद ज़रूरी क्रान्तिकारी माँग है क्योंकि इस माँग पर संघर्ष आगे बढ़ने पर पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा सबको पक्का रोज़गार देने की असम्भाव्यता की चौहद्दी जनता को दिखने लगती है। वहीं इस दिशा में जनएकजुटता के बल पर कोई भी जीत पहले से ही संकटग्रस्त पूँजीवादी खेमे के संकट को और बढ़ायेगी। ये दोनों ही सूरतें मेहनतकश वर्ग के संघर्ष के पक्ष में हैं। लेकिन इस स्थिति से पूरी तरह मुक्ति तभी मिल सकती है जबकि मुट्ठीभर पूँजीपति जमात के मुनाफ़े पर टिकी वर्तमान व्यवस्था को क्रान्ति के रास्ते उखाड़ फेंका जाये और उसकी जगह पर समाजवादी व्यवस्था का निर्माण किया जाये। समाजवादी देशों के अतीत के अनुभव बताते हैं कि किस तरह समाजवादी नियोजित अर्थव्यवस्था में कुछ ही समय में ऐसी समस्याएँ जड़ से मिटा दी गयी थीं। ●

फ़ासीवादियों और ज़ायनवादियों की प्रगाढ़ होती एकता!

(पेज 1 से आगे)

क्नेसेट को संबोधित करते हुए कहा कि "वह इज़रायल पर 7 अक्टूबर के बर्बर आतंकवादी हमले की कड़ी निन्दा करते हैं और इज़रायलियों के दुःख और परेशानी की घड़ी में उनके साथ खड़े हैं।" इस बयान में फ़िलिस्तीनी अवाम के मुक्ति-संघर्ष को आतंकवादी हमला क़रार देना ठीक वैसा ही था जैसे हमारे देश में कोई 1857 के क्रान्तिकारियों को आतंकवादी कहे और भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरू की ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के ख़िलाफ़ लड़ाई को आतंकवादी गतिविधि क़रार दे!

7 अक्टूबर 2023 वह दिन था जब ग़ज़ा के यातना शिविर में क़ैद लोगों ने बग़ावत की थी अपनी जगह-ज़मीन के लिए, अपनी आज़ादी के लिए। फ़िलिस्तीन के मामले में असली आतंकवादी तो ज़ायनवादी इज़रायल है और उसको शह देने वाली पश्चिमी साम्राज्यवादी ताक़तें हैं जिनकी मदद से इज़रायल दशकों से फ़िलिस्तीन में भीषण रक्तपात और नरसंहार करता आया है। ऐसी औपनिवेशिक ताक़तों के ख़िलाफ़ प्रतिरोध का जनता को पूर्ण अधिकार होता है और फ़िलिस्तीनी जनता ने 7 अक्टूबर को यही किया। पिछले आठ दशकों से इज़रायली सेटलर कोलोनियल परियोजना फ़िलिस्तीनियों की हत्या, विस्थापन, दमन और उत्पीड़न को अंजाम देती आयी है। मगर इस पूरी स्थिति को नज़रअन्दाज़ करते हुए, और अबतक भारत सरकार की फ़िलिस्तीनी राष्ट्रीय मुक्ति के प्रति बची-खुची पक्षधरता के ख़िलाफ़ जाकर एकतरफ़ा तरीके से प्रधानमंत्री ने उपनिवेशवादियों और अपने हत्यारे ज़ायनवादी भाइयों के पक्ष में बोला! यह फ़ासीवादी ताक़तों द्वारा भारत के आम अवाम और फ़िलिस्तीनी अवाम के मुक्ति-संघर्ष के साथ किया गया धोखा है। मोदी की यात्रा ने फ़ासीवादियों और ज़ायनवादियों की असल मंशा को भी उजागर कर दिया और यह साबित कर दिया कि दोनों ही मानवद्रोही ताक़तें हैं।

इसके बाद मोदी ने ग़ज़ा पर क़ब्ज़े को बनाये रखने के लिए बनाये गये "बोर्ड ऑफ़ पीस" जैसी अमेरिकी साम्राज्यवादी साज़िश और ढोंग का भरपूर समर्थन किया। एक ऐसे समय में जब अन्तरराष्ट्रीय आपराधिक न्यायालय तक ने नेतन्याहू को "युद्ध अपराधी" घोषित किया है और दुनियाभर के अवाम ने उसे इन्सानियत का दुश्मन बताया है तब प्रधानमंत्री मोदी उसे अपना "भाई" बता रहे हैं और इज़रायल को "भारत का फ़ादरलैंड" (पितृभूमि) क़रार दे रहे हैं! मोदी सरकार का यह घृणित रवैया न सिर्फ़ फ़िलिस्तीनी अवाम की पीठ में छुरा घोंपने के समान है बल्कि भारतीय जनता के साथ भी किया गया छल है।

एप्स्टीन फ़ाइल्स के खुलासे के साथ मोदी की इज़रायल यात्रा पर उठते सवाल

नरेन्द्र मोदी द्वारा इज़रायल की यह दो-दिवसीय यात्रा एक ऐसे समय में हुई है जब जेफ़री एप्स्टीन जैसे पतित व्यक्ति के साथ भाजपा के नेताओं-मंत्रियों और अम्बानी जैसे पूँजीपतियों की संलिप्तता का मामला सामने आया था। जेफ़री एप्स्टीन एक गलीज़ नरभक्षी था और बच्चियों के साथ बलात्कार व यौन अपराध का अन्तरराष्ट्रीय रैकेट चलाता था। उसके घृणित कारनामे न केवल पूँजीवादी समाज की सड़ाँध और गलाज़त को प्रदर्शित करते हैं बल्कि दुनिया भर के शासक वर्गों की पतनशीलता को भी उघाड़ कर रख देते हैं। ऐसे घृणित व्यक्ति के साथ भाजपा के नेताओं और खुद नरेन्द्र मोदी के कथित सम्बन्ध आम जनता के लिए कई सवाल खड़े कर रहे थे। एप्स्टीन 2008 में ही यौन अपराधी साबित हो चुका था, मगर इसके बावजूद 2017 में अनिल अम्बानी, हरदीप सिंह पुरी आदि का एप्सटीन के साथ मेलजोल और अमेरिकी अधिकारियों के साथ मीटिंग्स का कार्यक्रम बनाना किन वजहों से हो सकता है? क्या यह राजनीतिक व व्यापारिक फ़ायदों के लिए था या फ़िर निजी फ़ायदों के लिए? एप्स्टीन स्वयं एक ज़ायनवादी था और इज़रायली ख़ुफ़िया एजेंसी मोस्साद का एजेण्ट था। उसके साथ रिश्तों की बात सामने आने पर दुनिया के कई रसूख़दार व्यक्तियों को गिरफ़्तार किया गया है और कई से उनके पदों से इस्तीफ़े ले लिये गये हैं। सिर्फ़ डोनाल्ड ट्रम्प का अमेरिका और मोदी का भारत ही ऐसे देश हैं, जहाँ एप्सटीन फ़ाइलों में नाम आने के बाद भी किसी पर कार्रवाई तो दूर, जाँच की भी घोषणा नहीं की गयी है। सवाल है कि 2008 में एप्स्टीन की घिनौनी असलियत दुनिया के सामने आने के बाद भी भाजपा के नेताओं की बातचीत ऐसे घृणित, बलात्कारी व्यक्ति के साथ क्यों हो रही थी?

मोदी की 2017 की इज़रायल यात्रा भी सन्देह के दायरे में है। मोदी सरकार की 6 जुलाई 2017 की यात्रा के बाद, एप्स्टीन ने किसी व्यक्ति को ईमेल करते हुए लिखा कि "भारतीय प्रधानमंत्री मोदी ने उससे सलाह ली और वह अमेरिकी राष्ट्रपति के लिए इज़रायल में नाचा-गाया और यह काम कर गया।"

नरेन्द्र मोदी के हालिया इज़रायल यात्रा से वापस आने के अगले ही दिन ईरान पर अमेरिका और इज़रायल ने एकतरफ़ा हमला कर दिया और इसके शोर में एप्स्टीन फ़ाइल्स मामले पर मिट्टी डाल दी गयी क्योंकि इन दोनों देशों के नेता ख़ुद इस काण्ड में बुरी तरह से फँसे हुए हैं। पश्चिमी देशों के कई टिप्पणीकारों का कहना है कि अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रम्प द्वारा ईरान पर हमले के पीछे बड़ा कारण एप्स्टीन फ़ाइल्स में फँसा होना ही है, जिसका फ़ायदा नेतन्याहू उठा रहा है। इज़रायल-अमेरिका के सामने मोदी सरकार इस क़दर झुकी हुई है कि ईरान पर हमले में 175 छोटी बच्चियों की हत्या और उनके शीर्ष नेतृत्व की हत्या के बाद क़रीब एक हफ़्ते तक भारत सरकार ने हमले की निन्दा करना तो दूर, शोक सन्देश तक नहीं व्यक्त किया। यह सब अनायास नहीं था। मोदी सरकार की तमाम तिकड़मों के बावजूद ये सभी तथ्य इस बात की ओर इशारा करते हैं कि एप्सटीन फ़ाइल्स के कुकृत्यों में भारत के फ़ासीवादियों की भी संलिप्तता है।

भाजपा राज में इज़रायल के साथ बढ़ते व्यापारिक व कूटनीतिक रिश्ते

इज़रायल के साथ भारत के रिश्तों में गरमाहट नवउदारवाद के पदार्पण के साथ ही आनी शुरू हो गयी थी जब 1992 में नरसिंह राव की सरकार ने इज़रायल के साथ राजनयिक रिश्तों की शुरुआत की। उसके बाद देवगौड़ा के संयुक्त मोर्चे की सरकार ने बराक मिसाइल के समझौते पर हस्ताक्षर करके इज़रायल के साथ सामरिक सम्बन्धों की नींव रखी थी। आगे अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व वाली राजग सरकार इज़रायल के साथ सम्बन्धों को नयी ऊँचाइयों पर ले गयी। यही वह दौर था जब इज़रायल के नरभक्षी प्रधानमन्त्री एरियल शैरोन ने भारत की यात्रा की। यह किसी इज़रायली प्रधानमन्त्री की पहली भारत यात्रा थी। 2004 से 2014 के बीच मनमोहन सिंह के नेतृत्व में कांग्रेस शासन ने भी इज़रायल के साथ सामरिक सम्बन्धों में विस्तार की प्रक्रिया जारी रखी।

लेकिन 2014 में मोदी के नेतृत्व में हिन्दुत्ववादी फ़ासीवादियों के सत्ता में पहुँचने के बाद से ही इज़रायल के साथ क़रीबी में जो छलाँग लगी उसका असल कारण फ़ासीवादियों और ज़ायनवादियों की वैचारिक एकता में निहित है। हमारे देश के फ़ासिस्टों और इज़रायली ज़ायनवादी हत्यारों का भाईचारा आज किसी से छुपा नहीं है। वैसे तो ये दोनों ही अपने आप को प्राचीन धर्म और संस्कृति का ध्वजधारक बताते हैं मगर असल में इनका प्राचीन सभ्यता और संस्कृतियों से कोई लेना-देना नहीं है। जिस प्रकार हिन्दू धर्म और हिन्दुत्व की फ़ासीवादी विचारधारा एक नहीं है, वैसे ही यहूदियों का धर्म और ज़ायनवाद भी एक नहीं हैं। दोनों ही अपने आप को पूरे धर्म का प्रतिनिधित्व करने वाला बताते हैं। परन्तु ये दोनों ही मानवद्रोही विचारधाराएँ, आधुनिक पतनशील पूँजीवाद की पैदाइश हैं और उसी की सेवा करती हैं। एक नक़ली दुश्मन की छवि का निर्माण इन दोनों विचारधाराओं की ख़ासियत है। भारत में हिन्दुत्व फ़ासीवादियों के लिए वह नक़ली दुश्मन मुसलमान है और ज़ायनवाद के लिए वह नक़ली दुश्मन फ़िलिस्तीनी अरब क़ौम है जिसका बहुलांश मुसलमान है, हालाँकि अन्य धर्मों के अरब लोग भी फ़िलिस्तीनी क़ौम का हिस्सा हैं। इसीलिए हमारे देश में संघ और भाजपा द्वारा फ़िलिस्तीन-इज़रायल के मसले को धार्मिक झगड़े के तौर पर पेश किया जाता है, जबकि असलियत यह है कि इसका धर्म से कोई लेना-देना है ही नहीं और यह फ़िलिस्तीन के क़ौमी दमन और उसकी राष्ट्रीय आज़ादी का मसला है। संघी फ़ासीवादी देश के बड़े पूँजीपतियों, अडानी-अम्बानी की सेवा करते है, तो वहीं ज़ायनवाद पश्चिम एशिया में पहले प्रमुखतः ब्रिटिश साम्राज्यवाद के हितों की हिफ़ाज़त करता था और अब अमेरिकी साम्राज्यवाद का लठैत और गुण्डा बना हुआ है। पूँजीवाद-साम्राज्यवाद के हितों की हिफ़ाज़त करने के लिए ये प्राचीन सभ्यता-संस्कृति का जाप केवल लोगों को गुमराह कर शोषण और लूट को बदस्तूर बनाये रखने के लिए करते हैं। इसी विचारधारात्मक एकता की ज़मीन पर हमारे देश के "नॉन-बायोलॉजिकल प्रधानमंत्री" मदरलैंड-फ़ादरलैंड का जाप करते हुए लोट-पोट हुए जा रहे हैं!

इज़रायल के साथ बढ़े व्यापारिक और कूटनीतिक रिश्तों में भी इस एकता की झलक देखने को मिलती है। चन्द उदाहरणों के ज़रिये हम इसे समझ सकते हैं। 2014 में प्रधानमन्त्री की अध्यक्षता वाली सुरक्षा मामलों की कैबिनेट कमेटी ने इज़रायल की 262 बराक मिसाइलों की ख़रीद को हरी झण्डी दे दी। ग़ौरतलब है कि इन्हीं बराक मिसाइलों की ख़रीद को लेकर 2001 में अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार के समय में एक घोटाला सामने आया था जिसमें जार्ज फर्नाण्डीस, उनकी सहयोगी और नौसेना के एक अधिकारी सुरेश नन्दा का नाम शामिल था। इस घोटाले में फर्नाण्डीस की पार्टी से जुड़े रहे आर.के. जैन को गिरफ़्तार भी किया गया था। इसके बावजूद मोदी सरकार ने इज़रायल से अपनी मित्रता का सबूत देते हुए एक बार फिर से इस सौदे को मंज़ूरी दे दी थी। अमेरिका के अलावा भारत उन चन्द गिने-चुने देशों में है जिसका इज़रायल के साथ सामरिक और व्यापारिक सम्बन्ध लगातार फल-फूल रहा है। भारत इज़रायल द्वारा बेचे जाने वाले हथियारों का दुनिया में सबसे बड़ा ख़रीदार है और भारत को हथियारों की सप्लाई करने वाले देशों में इज़रायल का स्थान दूसरा है। केवल रक्षा के क्षेत्र में ही नहीं इज़रायल हमारे देश के कई राज्यों में जल संरक्षण, सिंचाई आदि के क्षेत्र में तकनीकी सहायता के लिए सेन्टर ऑफ़ एक्सीलेंस के ज़रिये अपने पाँव पसार चुका है। जनता के आन्दोलनों को कुचलने के तौर-तरीके भारत की पुलिस और सेना को सिखाने के लिये इज़रायल की पुलिस व खुफ़िया एजेंसी मोस्साद को नियमित तौर पर भारत आने की छूट है। अपने देश के भीतर प्रतिरोध को कुचलने के लिए ख़ुफ़िया पेगासस ऐप भी मोदी सरकार को इज़रायली जायनवादियों से ही मिला है। मोदी और नेतन्याहू सरकार पेगासस जैसे ख़ुफ़िया तन्त्र, जिसे अब तक का सबसे उन्नत व ख़तरनाक जासूसी स्पाइवेयर माना जा रहा है, के ज़रिये प्रतिरोध की आवाज़ों का दमन करने का काम कर रही हैं। पेगासस का इस्तेमाल मज़दूरों के आन्दोलनों को कुचलने से लेकर कश्मीर और उत्तर-पूर्व में दमित क़ौमों के उत्पीड़न के लिए करने में भारतीय हुक्मरान कोई कोर-कसर नहीं छोड़ रहे हैं। इतना ही नहीं, हिन्दुत्ववादी फ़ासीवादी अपने वैचारिक रिश्तेदार ज़ायनवादियों के 'बर्बर इज़रायली मॉडल' से नित-नये जनविरोधी हथकण्डे सीख रहे हैं।

अक्टूबर 2023 में इज़रायल में जब मजदूरों की कमी हुई तब हज़ारों भारतीय मज़दूरों को मोदी सरकार द्वारा इज़रायल में मरने के लिये भेज दिया गया। इज़रायलियों द्वारा भारतीय नागरिकों के साथ दोयम दर्जे के व्यवहार की घटनाएँ आम बात हैं लेकिन इसपर मोदी सरकार की चुप्पी इस बात को दर्शाती है कि ये दोनों ताक़तें अवाम के हितों को कुचलकर अपनी एकता क़ायम रखने का काम करती हैं। वहीं इज़रायल भारतीय मिसाइलों का इस्तेमाल फ़िलिस्तीनी अवाम के नरसंहार के लिए कर रहा है, यानी फ़िलिस्तीनी जनता की हत्या में दोनों ही भाई-भाई हैं। यह ज़ायनवादियों और फ़ासीवादियों की मज़बूत होती एकता का सूचक है जो केवल फ़िलिस्तीनी जनता के ही दुश्मन नहीं हैं बल्कि पूरी दुनिया के मेहनतकश अवाम के दुश्मन हैं।

यही कारण है कि दुनियाभर के तमाम इंसाफ़पसन्द लोग, जो फ़िलिस्तीनी जनता के मुक्ति संघर्ष के पक्ष में खड़े हैं, इन ज़ायनवादी-फ़ासीवादी हत्यारों की एकता के ख़िलाफ़ भी बोल रहे हैं। भारत के भी इंसाफ़पसन्द अवाम ने मोदी की दूसरी इज़रायल यात्रा का विरोध किया है और भारत की जनता के क्रान्तिकारी संघर्ष के साथ विश्वासघात बताते हुए मोदी की इज़रायल यात्रा की भर्त्सना की है।

बंगाल में चुनाव आयोग की मिलीभगत से एसआईआर के ज़रिये चुनाव को 'हाईजैक' करने में जुटी फ़ासिस्ट भाजपा!

• अदिति

पिछले कुछ समय से मोदी सरकार और चुनाव आयोग के गठजोड़ द्वारा 12 राज्यों में एसआईआर (स्पेशल इन्टेन्सिव रिवीज़न) की प्रक्रिया शुरू की जा चुकी है। पूरे देश में भारी अलोकप्रियता के चलते अपनी डूबती हुई नैया पार लगाने के लिए भाजपा ने एक नया सहारा एसआईआर की शक़्ल में ढूँढ़ लिया है। इसका सीधा निशाना मुसलमान और ग़रीब मेहनतकश आबादी है। बंगाल में भी आगामी विधानसभा चुनावों से ऐन पहले बड़े पैमाने पर एसआईआर की प्रक्रिया चलायी जा रही है जिससे भाजपा को चुनाव में फ़ायदा पहुँचाया जा सके। अभी तक 62 लाख लोगों के नाम काटने की ख़बर सामने आयी है, जिसमें में से 24 लाख मृत लोग दिखाये गये हैं, 18 लाख लोगों के नाम शिफ़्ट (स्थानान्तरण) होने के तौर पर दिखाये गये हैं और 12 लाख लोगों को अनुपस्थित क़रार दिया गया है।

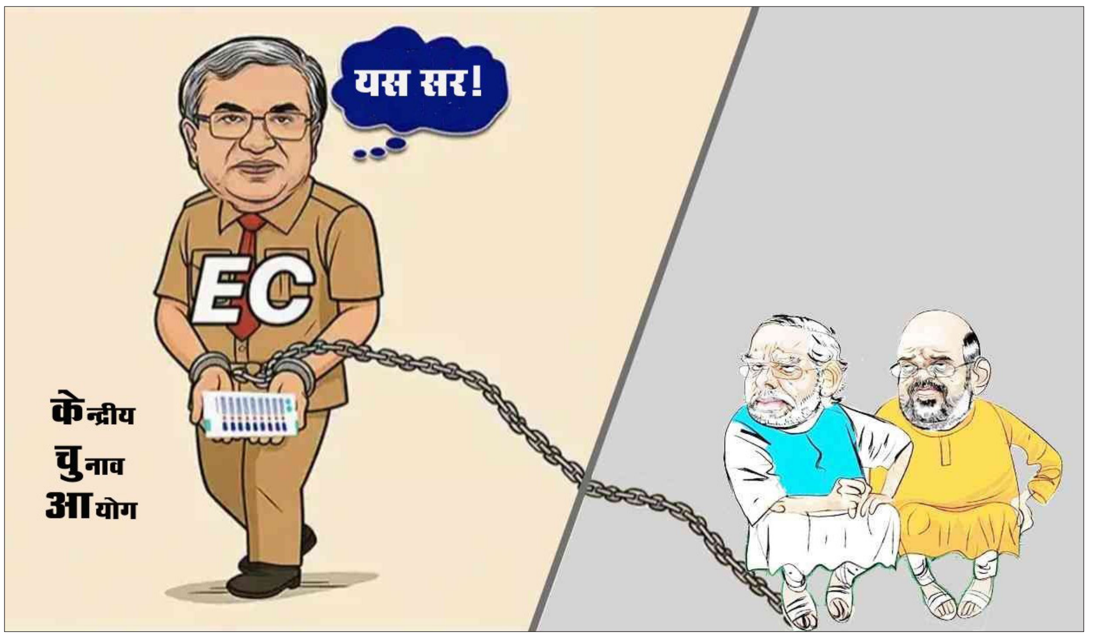

इससे पहले बिहार में एसआईआर के बाद जारी ड्राफ़्ट सूची में आनन-फ़ानन में 65 लाख से अधिक वोटरों के नाम काट दिये गये थे। उत्तर प्रदेश में एसआईआर के लिए 4 नवम्बर से 4 दिसम्बर तक का समय तय किया गया था, लेकिन चुनाव आयोग को अपनी लचर व्यवस्था के चलते विरोध का सामना करना पड़ा। नतीजन केचुआ द्वारा वहाँ एसआईआर की समय अवधि फ़रवरी तक बढ़ा दी गयी। इसके अलावा पूरे देश से ही एसआईआर की प्रक्रिया में लगे बीएलओकर्मियों की आत्महत्या की घटनाएँ भी इस दौरान सामने आयीं हैं। कई जगह इन कर्मियों द्वारा काम के दबाव का कारण बताते हुए वीडियो व पत्र भी सामने आये। कई बीएलओ ने यह भी कहा कि उन पर भाजपा को फ़ायदा पहुँचाने के लिए लोगों के नाम हटाने का दबाव डाला जा रहा है। यह दिखलाता है कि भाजपा हर हाल में अपनी चुनावी जीत सुनिश्चित करना चाहती है, भले ही इस प्रक्रिया में आम लोगों की बलि ही क्यों न देनी पड़े!

चुनाव जीतने के लिए भाजपा का नया हथकण्डा

बंगाल में एसआईआर की प्रक्रिया शुरू होते ही भाजपा के सांसद शांतनु ठाकुर और भाजपा विधायक सुब्रतो ठाकुर द्वारा "हिन्दू" होने के कार्ड बाँटे गये, जिसमें सांसद साहब के हस्ताक्षर भी अंकित है! हिन्दू संगठनों द्वारा बाकायदा 700 कैम्प लगाने के दावे किये जा रहे हैं, जिसमें मतुआ समुदाय (नामशूद्र अनूसूचित जाति) के लोगों से 50 से 100 रुपये लेकर "हिन्दू" कार्ड बाँटे गये हैं। यही नहीं, 800 रुपये लेकर नागरिकता देने की गारण्टी भी भाजपा दे रही है! मतलब देशी-विदेशी पूँजीपतियों को देश बेचने के बाद अब ग़रीबों को नागरिकता बेचने का धन्धा भी भाजपा ने शुरू कर दिया है! भाजपा सांसद शांतनु ठाकुर का कहना है कि वह "हिन्दू" कार्ड धारकों के नाम वोटर सूची में डालने की सिफ़ारिश चुनाव आयोग से करेंगे! "हिन्दू" कार्ड बाँटने का मसला बंगाल के राजनीतिक गलियारों में चर्चा का विषय बन चुका है। मतुआ समुदाय की संख्या बंगाल में 30 लाख से लेकर 50 लाख के बीच बतायी जाती है, इसलिए चाहे ममता बनर्जी की तृणमूल काँग्रेस हो या फिर भाजपा हो, सभी पार्टियाँ तमाम हथकण्डों के ज़रिये इस समुदाय के वोट की फसल को काटने में लगी हुई हैं।

बंगाल के साथ-साथ अन्य 12 राज्यों में घोषित या अघोषित तौर पर एसआईआर की प्रक्रिया जारी है। इन तमाम राज्यों में ख़ासकर ग़रीबों, मुसलमानों, दलितों, स्त्रियों और प्रवासी मज़दूरों को निशाना बनाया जा रहा है। उत्तर प्रदेश से लेकर बंगाल और अन्य राज्यों में एसआईआर का कोई एक स्वरूप नहीं है। हर राज्य में भाजपा व मोदी सरकार अलग-अलग तरीक़ों से चुनाव आयोग के साथ मिलकर इसे अंजाम दे रही है। सवाल यह भी उठता है कि बंगाल जैसे राज्य में, जहाँ से ज़्यादातर प्रवासी मज़दूर अलग-अलग राज्यों में काम करने के लिए जाते हैं और प्राकृतिक आपदाओं समेत अन्य कारकों की वजह से उनके प्रमाण पत्र या पहचान कार्ड उनके पास नहीं है, क्या उन सबको डिटेंशन कैंप में भेज दिया जायेगा? फ़ासीवादी भाजपा की मानें तो अब "अमृतकाल" में इस देश में ऐसा ही होगा!

आज यह बात दिन के उजाले की तरह साफ हो गयी है कि अपनी जनविरोधी और पूँजीपरस्त नीतियों के चलते भाजपा की अलोकप्रियता लगातार बढ़ती जा रही है जिसके कारण भाजपा सरकार में बने रहने के लिए वोट चोरी, एसआईआर, ईवीएम घोटाले जैसे हथकण्डे अपना रही है। यह हम 2024 के लोकसभा चुनावों के समय भी देख चुके हैं। बिना किसी घोटाले के भाजपा सरकार 240 सीटों के आँकड़े तक नहीं पहुँच सकती थी। मोदी सरकार अपने 11 साल के कार्यकाल में तमाम बुनियादी मुद्दों से जनता का ध्यान भटकाती रही है। इसलिए एसआईआर के ज़रिये नागरिकता साबित करने की आम मेहनतकश-विरोधी प्रक्रिया पर पर्दा डालने और उसे वैध ठहराने के लिए फ़ासिस्ट न केवल "अवैध घुसपैठ को रोकने" का शोर मचा रहे हैं, बल्कि अवैध घुसपैठ को साम्प्रदायिक रंग देकर बड़ी आबादी का ध्यान भटकाने की साज़िश कर रहे हैं।

भाजपा नेताओं के साम्प्रदायिक बयानों को नमक-मिर्च लगाकर गोदी मीडिया और सोशल मीडिया पर इनके भक्तों द्वारा खूब प्रचारित किया जा रहा है। इनके द्वारा यह बात लोगों के दिमागों में बिठाने का काम किया जा रहा है कि एसआईआर की प्रक्रिया "बांग्लादेशी मुस्लिम घुसपैठियो" को चिह्नित करने के लिए चलायी जा रही है। बिहार चुनाव में अमित शाह और नरेन्द्र मोदी दोनों ने खुलकर कहा कि यह "घुसपैठियों" को भगाने का चुनाव है और एसआईआर के ज़रिये "घुसपैठियों" की पहचान की जायेगी। इन "घुसपैठियों" से मोदी-शाह का मतलब हमेशा बांग्लादेशी मुसलमान था। यानी "घुसपैठिये" के नक़ली शोर के पीछे भी भाजपाई फ़ासीवादियों का असली मक़सद था समाज में साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण को बढ़ावा देना ताकि जनता को असल मसलों से भटकाया जा सके। भाजपा की झूठ-प्रचार मशीनरी ने फैलाया था कि बिहार के सीमांचल के चार ज़िले "घुसपैठियों" से भरे हुए हैं! लेकिन इन चार ज़िलों में नागरिकता के सम्बन्ध में मिलने वाली आपत्तियों की कुल संख्या थी मात्र 106, इनमें से भी केवल 40 के नाम ख़ारिज हुए, हालाँकि उसमें भी पर्याप्त धाँधली की गयी। इन 40 ख़ारिज मतदाताओं में हिन्दू कितने थे और मुसलमान कितने? हिन्दू थे 25 और मुसलमान थे 15! यानी, "घुसपैठिये" तो मिले नहीं, लेकिन वैध नागरिकों के ही नाम काट दिये गये और मुसलमान आबादी के बढ़ने का हौव्वा फैलाकर हिन्दू आम मेहनतकश आबादी को ही चपेट में ले लिया गया! यही असम के एनआरसी में भी हुआ था जिसमें 19 लाख रद्द नागरिकताओं में 14 लाख हिन्दू निकले थे।

असम, बिहार, बंगाल आदि के अनुभवों के बाद देश की मेहनतकश हिन्दू आबादी को कम-से-कम अब समझ लेना चाहिए कि एनआरसी, सीएए और अब एसआईआर वास्तव में समूची जनता के ख़िलाफ़ है और जहाँ कहीं मोदी सरकार इसे फिर से करने का प्रयास करे, वहाँ हमें सड़कों पर उतरकर इसका विरोध करना चाहिए। "घुसपैठियों" का नक़ली डर दिखाकर वास्तव में सभी धर्मों व जातियों की आम मेहनतकश जनता को निशाना बनाया जा रहा है। निश्चित तौर पर, इसके ज़रिये सबसे ज़्यादा मुस्लिम आम जनता के विरुद्ध ज़हरीला माहौल बनाया जा रहा है ताकि बेरोज़गारी और महँगाई से त्रस्त जनता का गुस्सा एक नक़ली दुश्मन पर फूट जाये और मोदी सरकार को जनता कठघरे से बाहर कर दे। हिन्दू का दुश्मन मुसलमान या मुसलमान का दुश्मन हिन्दू नहीं है, बल्कि समस्त आम मेहनतकश हिन्दुओं, मुसलमानों, सिखों, ईसाइयों, दलितों, स्त्रियों, आदिवासियों की दुश्मन मोदी सरकार और यह पूँजीवादी व्यवस्था है।

एसआईआर के ज़रिये 'केचुआ' (केन्द्रीय चुनाव आयोग) और फ़ासीवादी ताक़तों की साज़िश को तभी ध्वस्त किया जा सकता है, जब अवाम ईवीएम की जगह बैलेट पेपर से चुनाव करवाने के लिए सड़कों पर ज़बरदस्त आन्दोलन के लिए उतरे। क़ायदे से तो विपक्ष, जो कि लम्बे समय से चुनावों में वोट चोरी का मुद्दा उठा रहा है, उसे चुनावों का बहिष्कार करते हुए सड़कों पर उतर जाना चाहिए। क्योंकि जब वह आँकड़ों और तथ्यों के ज़रिये यह बात साबित कर चुका है तो फिर चुनाव के बाद जनादेश को स्वीकार कर लेना उनके वोट चोरी के मुद्दे को जनता के बीच सन्दिग्ध बना देता है। लेकिन आम तौर पर पूँजीवादी जनवाद के क्षरण के वर्तमान दौर में विपक्षी पूँजीवादी ग़ैर-फ़ासिस्ट पार्टियों द्वारा 'निष्पक्ष और पारदर्शी' मतदान के जनवादी अधिकारों के लिए सड़कों पर उतरना सम्भव नहीं दिखता। 'निष्पक्ष और पारदर्शी' मतदान के जनवादी अधिकार के लिए क्रान्तिकारी ताक़तों और इन्साफ़पसन्द प्रगतिशील शक्तियों को आम जनता को लामबन्द करने की तैयारी में लगना होगा। इसे विमर्श और प्रतीकात्मक प्रदर्शन की जगह एक देशव्यापी जुझारू जनान्दोलन में तब्दील करना होगा। दूसरे, तमाम क्रान्तिकारी और प्रगतिशील ताक़तों को एसआईआर के ज़रिये नागरिकता से हाथ धोने वाले लोगों की हर तरह की मदद के लिए आगे आना होगा। "अवैध घुसपैठ" और "मुसलमान" के सरकारी साम्प्रदायिक फ़ासिस्ट शोर की सच्चाई को आम जनता में उजागर करना होगा। इस फ़ासीवादी सरकार और भाजपा का घोर पूँजीपरस्त अमानवीय चेहरा जनता में नंगा करना होगा।

शर्मनाक!! योगी का बुलडोज़र अब क्रान्तिकारी शहीदों की मूर्तियों पर भी चल रहा है!!

23 मार्च को जब सारा देश भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु के शहादत दिवस पर उनको याद कर रहा था, तो उत्तर प्रदेश के शाहजहांपुर में सरकारी बुलडोजर हमारे तीन शहीद क्रान्तिकारियों की मूर्तियों को चकनाचूर कर रहा था!

जिस शाहजहांपुर की जनता को अपने इंक़लाबी सपूतों रामप्रसाद बिस्मिल, अशफ़ाक़ुल्ला ख़ां और रोशन सिंह पर फ़ख़्र है, उसी शाहजहांपुर के सरकारी अमले ने शहर के टाउनहॉल चौक पर 1972 में स्थापित इन तीनों की प्रतिमाओं को रात तीन बजे बुलडोज़र चलाकर ध्वस्त कर दिया।

जिस तरह अंग्रेजों ने रातोंरात भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु के शवों को जलवाकर सतलज में फेंक दिया था, उसी तरह योगी सरकार के प्रशासन ने रातोंरात इन शहीदों की प्रतिमाओं को तोड़कर उनका मलबा दूर फिंकवा दिया।

लेकिन जिस तरह अंग्रेज़ अपने अपराध छिपा नहीं पाए, उसी तरह इन काले अंग्रेज़ों का गुनाह भी जनता की निगाहों से छिप नहीं सका है।

अंग्रेज़ों के पिट्ठू इन संघियों का क्रान्तिकारियों और उनकी विचारधारा से हमेशा बैर रहा है और इनकी नफ़रत सामने आ ही जाती है।

इस शर्मनाक हरकत का पुरज़ोर विरोध होना चाहिए और प्रशासन को पहले से भी बेहतर और बड़ी प्रतिमाएँ उसी स्थान पर लगाने के लिए जल्द से जल्द मजबूर किया जाना चाहिए।

अशफ़ाक़-बिस्मिल साथ चलेंगे!
हम नहीं बँटेंगे, मिलके लड़ेंगे!!

मोदी के इज़रायल दौरे और मोदी सरकार द्वारा 'बोर्ड ऑफ़ पीस' जैसी साम्राज्यवादी साज़िश के समर्थन पर देशव्यापी विरोध प्रदर्शन!

15 फ़रवरी 2026, फ़िलिस्तीन के साथ एकजुट भारतीय जन (IPSP) ने प्रधानमंत्री मोदी के इज़रायल दौरे का विरोध करते हुए देश के कई शहरों में विरोध प्रदर्शन आयोजित किया। इस प्रदर्शन में कई अन्य छात्र-युवा, नागरिक और मज़दूर संगठन भी शामिल हुए। दिल्ली में जन्तर-मन्तर पर हुए प्रदर्शन में कई सामाजिक कार्यकर्ता, प्रोफ़ेसर व बुद्धिजीवी भी शामिल रहे। दिल्ली के अलावा मुंबई, हैदराबाद, पुणे, रोहतक, विशाखापत्तनम, विजयवाड़ा, पटना और कोलकाता में लोगों ने विरोध में आवाज़ उठायी।

फ़िलिस्तीनी जनता के नरसंहार में शामिल इज़रायल के साथ मोदी सरकार द्वारा नजदीकियाँ बढ़ाये जाने की लोगों ने कड़े शब्दों में भर्त्सना की और साथ ही ट्रम्प प्रशासन द्वारा लाये गये तथाकथित "बोर्ड ऑफ़ पीस' में मोदी सरकार के शामिल होने के ख़िलाफ़ भी बात रखी।

फ़िलिस्तीन में नरसंहार को अंज़ाम देने वाले इज़रायल और अमेरिका ने 16 जनवरी 2026 को ग़ज़ा के "पुनर्निर्माण" की "योजना" के दूसरे चरण को शुरू करने के लिए तथाकथित "शांति बोर्ड" (बीओपी) के गठन की घोषणा की। अमेरिकी साम्राज्यवाद के नेतृत्व वाली यह संस्था ग़ज़ा के शासन को अपने हाथ में लेगी और वहाँ शान्ति क़ायम करेगी। यह फ़िलिस्तीन की आवाम के साथ एक क्रूर मज़ाक नहीं तो और क्या है?

असल में 'बोर्ड ऑफ पीस' ग़ज़ा की पूरी तबाही के बाद उस पर अपना शिकंजा कसने के लिए अमेरिका द्वारा तैयार किया गया एक तंत्र है, जिसमें फिलिस्तीनियों को उनके अपने भविष्य पर ही फैसला लेने का कोई अधिकार नहीं दिया गया है। यहाँ सवाल यह है कि ग़ज़ा का भविष्य तय करने वाला अमेरिका आख़िर होता कौन है? अपनी ही ज़मीन के पुनर्निर्माण और शासन के फैसलों से ग़ज़ा की अवाम को पूरे तरीक़े से बाहर कर दिया गया है। यह योजना ज़ायनवादी आतंकवादी इज़रायल और साम्राज्यवादी अमेरिका को ग़ज़ा को पूरी तरह नियंत्रित और अपने अधीन करने की खुली छूट देती है। वास्तव में यह परियोजना पश्चिम एशिया में अमेरिका-इज़रायल साम्राज्यवादी गठजोड़ के हितों को साधने और उसे पुख़्ता करने के लिए रची गयी एक साम्राज्यवादी साज़िश है। 'शान्ति योजना' का ढोंग इसके चार्टर ड्राफ्ट से ही साफ़ हो जाता है, जिसमें हैरान कर देने वाली बात यह है कि कहीं भी ग़ज़ा शब्द का ज़िक्र तक नहीं किया गया है! दिलचस्पी की बात यह है कि नवम्बर 2025 में पारित संयुक्त राष्ट्र के जिस प्रस्ताव में फ़िलिस्तीनी राज्य के लिए एक विश्वसनीय मार्ग की बात की गयी थी, उसे 3 महीने होने से पहले ही कूड़ेदान में फेंक दिया गया है! यह सोची-समझी साज़िश साम्राज्यवादी विस्तारवाद के लिए लायी गयी है।

भारत सरकार का पक्ष शुरू से ही फ़िलिस्तीनी आवाम के मुक्ति-संघर्ष के समर्थन में रहा है मगर भाजपा के सत्तासीन होने के बाद से फ़िलिस्तीन के प्रति इनके रुख में काफ़ी तेज़ी से बदलाव आया है। नरेन्द्र मोदी इज़रायल का दौरा करने वाले पहले प्रधानमंत्री बन चुके हैं। जहाँ वह एक तरफ़ अरब देशों के विदेश मंत्रियों को फ़िलिस्तीन के प्रति भारत के समर्थन का भरोसा दिलाते हैं, वहीं दूसरी ओर इज़रायल के साथ उनकी प्रगाढ़ होती मित्रता किसी से छुपी हुई नहीं है और अब तो वह इज़रायल के भ्रमण पर भी जा रहे हैं। यह पूरी तरह साफ़ है कि भाजपा की केन्द्र सरकार ने इज़रायल को अन्तरराष्ट्रीय समर्थन देकर उसके नरसंहार को परोक्ष रूप से जायज़ ठहराया है। यह फ़िलिस्तीन की जनता की पीठ में छुरा घोंपने के समान है। भले ही कागजों पर वे फ़िलिस्तीनी राज्य का समर्थन करने का ढोंग करते हों लेकिन ये ढोंग अन्तरराष्ट्रीय मंच पर अपनी छवि बचाने की एक खोखली और शर्मनाक कोशिश मात्र हैं। यह एक बार फिर मोदी सरकार के दोमुँहें और अवसरवादी चरित्र को बेनकाब करता है।

देशव्यापी प्रदर्शन के दौरान शामिल नागरिकों ने ये माँगें उठायीं :

1) भारत सरकार तत्काल अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प के 'बोर्ड ऑफ़ पीस' के निमन्त्रण को ठुकराये।

2) इज़रायल के साथ सभी आधिकारिक कार्यक्रमों को रद्द कर ज़ायनवादी सत्ता से तमाम रिश्ते मसलन राजनीतिक, सैन्य, सांस्कृतिक और राजनयिक सम्बन्ध ख़त्म करे।

3) प्रधानमंत्री अपनी इज़रायल यात्रा तत्काल रद्द करें।

इसके साथ ही उन्होंने कहा कि हम भारत की न्यायप्रिय जनता से अपील करते हैं कि वे फ़िलिस्तीनी राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष के साथ खड़े होते हुए भाजपा सरकार पर नरसंहार के गुनहगार इज़रायल के साथ सभी रिश्ते तोड़ने के लिए दबाव बनाएँ और फ़िलिस्तीन की मुक्ति के लिये संघर्ष तेज़ करें।

साम्प्रदायिक जुनून का मुकाबला करते हुए शहीद होने वाले महान क्रान्तिकारी पत्रकार गणेश शंकर विद्यार्थी के शहादत दिवस (25 मार्च) के अवसर पर

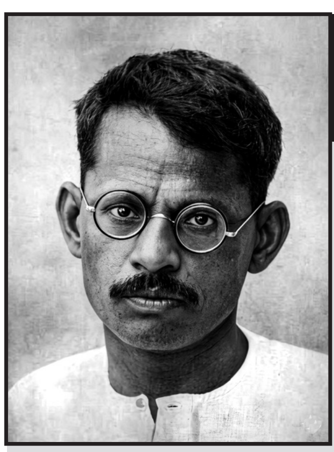

(राजनीति और पत्रकारिता के क्षेत्र में क़दम रखते ही गणेशशंकर विद्यार्थी ने किसानों और मज़दूरों के मोर्चे पर ध्यान केन्द्रित किया था। दिसम्बर, 1919 में उन्होंने कानपुर के 25 हज़ार कपड़ा-मिल मज़दूरों की ऐतिहासिक हड़ताल का नेतृत्व किया था। उन्होंने कानपुर में कपड़ा मिल-मज़दूरों को संगठित किया और 1927 से मृत्युपर्यन्त तक कानपुर मिल मज़दूर सभा के अध्यक्ष रहे। 'सभा' का मुख्य पत्र 'मज़दूर' भी उन्हीं की पहलक़दमी से निकला था। 25 मार्च 1931 को कानपुर में साम्प्रदायिक दंगों की आग बुझाते हुए वे शहीद हो गये थे। यहाँ हम उनके लेखों के कुछ उद्धरण दे रहे हैं।– सं.)

– देश की स्वाधीनता के लिए जो उद्योग किया जा रहा था, उसका वह दिन निस्सन्देह, अत्यन्त बुरा था, जिस दिन स्वाधीनता के क्षेत्र में ख़िलाफ़त, मुल्ला, मौलवियों और धर्माचार्यों को स्थान देना आवश्यक समझा गया। एक प्रकार से उस दिन हमने स्वाधीनता के क्षेत्र में एक कदम पीछे हटकर रखा था। हमें अपने उसी पाप का फल भोगना पड़ रहा है। देश की स्वाधीनता के संग्राम ही ने मौलाना अब्दुल बारी और शंकराचार्य को देश के सामने दूसरे रूप में पेश कर उन्हें अधिक शक्तिशाली बना दिया और हमारे इस काम का फल यह हुआ कि इस समय हमारे हाथों ही से बढ़ायी इनकी और इनके जैसे लोगों की शक्तियाँ हमारी जड़ उखाड़ने और देश में मजहबी पागलपन, प्रपंच और उत्पात का राज्य स्थापित कर रही हैं।

– हमारे देश में धर्म के नाम पर कुछ इने-गिने आदमी अपने हीन स्वार्थों की सिद्धि के लिए लोगों को लड़ाते-भिड़ाते हैं। धर्म और ईमान के नाम पर किये जाने वाले इस भीषण व्यापार को रोकने के लिए साहस और दृढ़ता के साथ उद्योग होना चाहिए।

– एक तरफ़ जहाँ जन आन्दोलन और राष्ट्रीय आन्दोलन हुए, वहीं, उनके साथ-साथ जातिगत और साम्प्रदायिक आन्दोलनों को भी जान-बूझकर शुरू किया गया क्योंकि ये आन्दोलन न तो अंग्रेज़ों के खिलाफ़ थे, न किसी वर्ग के, बल्कि ये दूसरी जातियों के खिलाफ़ थे।

– हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य को समाप्त करने का एक तरीका है कि ग्राम-संगठन के कार्य को हाथ में लेकर बिना भेदभाव के भारत के दीन किसानों की सेवा की जाये। उसी तरह शहर की मिलों में काम करने वाले लाखों-मज़दूरों के संगठनों की भी आवश्यकता है। किसानों और मज़दूरों का युग आ गया है। थोथी राजनीति से अब काम नहीं चलेगा।

– लेनिन के अधूरे ग्रन्थ के पन्ने रूस में ही नहीं, सर्वत्र लिखे जा रहे हैं। विप्लव होंगे, परिवर्तन की धाराएँ घूमेंगी, पुराने आतताईपन पर गाज गिरेगी।

ईरान पर अमेरिका-इज़रायल द्वारा थोपा गया साम्राज्यवादी युद्ध अमेरिकी साम्राज्यवाद और इज़रायली सेटलर उपनिवेशवाद की शर्मनाक हार के साथ ख़त्म होगा

(पेज 1 से आगे)

साम्राज्यवादी युद्धोन्मादियों के गिरोह का एकतरफ़ा निर्णय था, जो एप्स्टीन फ़ाइल्स से पैदा राजनीतिक संकट और इज़रायल द्वारा किये जा रहे ब्लैकमेल में फँसे हुए हैं और उससे निकलने की कोशिशों में लगे हुए हैं।

इस हमले का ढाँचागत कारण यह है कि अमेरिकी साम्राज्यवाद के वर्चस्व के क़रीब चार दशकों से जारी और क़रीब दो दशकों से त्वरित हो चुके पराभव की प्रक्रिया एक नये चरण में पहुँच रही है। अमेरिकी वर्चस्व का ह्रास यूक्रेन युद्ध में रूस के हाथों अमेरिका-नीत नाटो की निरन्तर जारी हार में और ताइवान व दक्षिण चीन समुद्र के मसले में भी नज़र आता रहा है। उसके पहले, अफ़ग़ानिस्तान से अमेरिका का दुम दबाकर भागना, इराक़ से पलायन और अफ्रीका में चीनी व रूसी साम्राज्यवाद के समक्ष बार-बार मिल रही रणनीतिक व कूटनीतिक हारों में भी अमेरिकी दबदबे का ख़ात्मा नज़र आता रहा है। ईरान युद्ध के दौरान भी ट्रम्प द्वारा यूरोप से मदद के लिए लगायी जा रही गुहारों, धमकियों और मिन्नतों से भी यह साफ़ ज़ाहिर हो रहा है कि इस साम्राज्यवादी दैत्य की हड्डियाँ अन्दर से गल चुकी हैं और वह अपनी सैन्य ताक़त के बूते, पुराने रणनीतिक क़रारों की निरन्तरता के बूते और पूरी दुनिया की प्रतिक्रियावादी पूँजीवादी सत्ताओं की रखवाली के वायदे के बूते टिका हुआ है। लेकिन ईरान ने यह भी दिखा दिया कि पश्चिमी साम्राज्यवाद के साथ समझौता करने वाली दुनिया की सभी प्रतिक्रियावादी सत्ताओं की रखवाली का अमेरिकी वायदा भी अब खोखला साबित हो चुका है क्योंकि पश्चिम एशिया में बहरीन, संयुक्त अरब अमीरात, सऊदी अरब, क़तर जैसी अमेरिका-समर्थक शाहों-शेख़ों की सत्ताओं वाले देशों पर हो रहे ईरानी हमलों से भी अमेरिका उनकी हिफ़ाज़त नहीं कर पा रहा है। वैश्विक पूँजीवाद के पुलिसमैन की भूमिका निभाने की औक़ात अमेरिका में नहीं रह गयी है, न ही डॉलर में पहले के समान वह ताक़त बची रह गयी है कि उसके ज़रिये किसी अन्य देश की बाँह मरोड़ी जा सके। अमेरिका ख़ुद पश्चिम एशिया के तमाम देशों में अपने सैन्य अड्डे तक ईरान के हमलों से नहीं बचा पा रहा है। *जब किसी साम्राज्यवादी वर्चस्वकारी शक्ति का पतन होता है तो उसका शासक वर्ग इस गिरावट को रोकने के लिए आनन-फ़ानन में तरह-तरह की कोशिशें करता है, और इसी प्रक्रिया में भयंकर ग़लतियाँ भी करता है। इस प्रक्रिया में निश्चित तौर पर वह दुनिया भर में काफ़ी तबाही और क़त्लेआम भी मचाता है। लेकिन यह उसकी शक्ति का लक्षण नहीं होता, बल्कि उसके ह्रास और पतन का लक्षण होता है। ईरान पर हमला भी अमेरिकी साम्राज्यवाद की एक ऐसी ही नयी ग़लती है।*

अमेरिका में ट्रम्प का राष्ट्रपति बनना स्वयं अमेरिकी साम्राज्यवाद और उसके शासक वर्ग के राजनीतिक संकट का लक्षण मात्र है। अपने पहले कार्यकाल में तो ट्रम्प अमेरिकी बुर्जुआ वर्ग का आम सहमति वाला उम्मीदवार ही नहीं था, लेकिन आर्थिक संकट के कारण पैदा हुई सामाजिक असुरक्षा व अनिश्चितता के चलते अमेरिकी गोरे टुटपुँजिया व टुटपुँजियाकृत गोरे मेहनतकश व अर्द्धसर्वहारा वर्ग के बीच पैदा हुए धुर-दक्षिणपन्थी उभार के कारण ट्रम्प ने चुनाव जीत लिया था। इस बार ट्रम्प छोटे-से अन्तर के साथ अमेरिकी पूँजीपति वर्ग का भी आम सहमति वाला उम्मीदवार बन गया था। लेकिन अब वह अन्तर समाप्त हो गया है। यह राजनीतिक उथल-पुथल और कुछ नहीं बल्कि एक गिरती हुई साम्राज्यवादी शक्ति के आन्तरिक अन्तरविरोधों के ही परिणाम हैं।

फ़िलिस्तीन व ग़ाज़ा के मसले ने अमेरिकी शासक वर्ग के संकट को और भी ज़्यादा बढ़ाया है। इज़रायल द्वारा एक लाख से ज़्यादा फ़िलिस्तीनी नागरिकों, बच्चों, बूढ़ों, जवानों की हत्या ने झूठे प्रचार के आधार पर अमेरिकी जनता के बीच इज़रायल के लिए पैदा किये गये कृत्रिम समर्थन को समाप्त करने का काम किया है। अमेरिकी जनता का बड़ा हिस्सा अब इज़रायल के बारे में नकारात्मक राय रखता है। लेकिन अमेरिकी शासक वर्ग को अपने साम्राज्यवादी हितों की रक्षा के लिए इज़रायल की आवश्यकता है। इसलिए वह निरन्तर हत्यारे सेटलर उपनिवेशवादी इज़रायल को धन व हथियार मुहैया कराता रहता है, जिससे कि इज़रायल ग़ाज़ा में अपने क़त्लेआम को जारी रख सके। *इसके कारण भी अमेरिकी साम्राज्यवादी सत्ता व्यापक जनसमुदायों में अपनी वैधता को खो रही है। इसके कारण भी अमेरिकी शासक वर्ग का राजनीतिक संकट और गहरा रहा है।*

उपरोक्त तात्कालिक व ढाँचागत कारणों के चलते इज़रायल ट्रम्प को ईरान पर हमला करने की भारी भूल करने के लिए उकसाने में कामयाब रहा। अमेरिका-इज़रायल को यह लग रहा था कि अगर ईरान में सत्तासीन इस्लामी शासन के शीर्ष नेतृत्व, उसकी सेना व सशस्त्र बलों के शीर्ष नेतृत्व आदि की हत्या कर दी जाये, उसके शहरों पर कुछ समय के लिए भारी बमबारी कर दी जाय तो ईरान में जनता ही इस्लामी सत्ता का तख़्तापलट कर देगी और कोई अमेरिका-इज़रायल परस्त सत्ता वहाँ बिठायी जा सकती है। लेकिन आयतुल्ला ख़ामनेई और कई शीर्ष नेताओं की हत्या का उल्टा असर हुआ। इसने ईरानी क़ौम में अमेरिकी-इज़रायली हमले के ख़िलाफ़ एकजुटता का माहौल बना दिया।

ग़ौरतलब है कि अपने दमनकारी रवैये के कारण आयतुल्ला का प्रतिक्रियावादी धार्मिक कट्टरपन्थी शासन ईरानी जनता के एक अच्छे-ख़ासे हिस्से में अलोकप्रिय हो चुका था। लेकिन साथ ही ईरान अमेरिकी साम्राज्यवाद और इज़रायली सेटलर उपनिवेश के लिए पश्चिम एशिया में सबसे बड़ी चुनौती और ख़तरा भी बना हुआ था। साथ ही, फ़िलिस्तीन की आज़ादी का भी सबसे सुसंगत समर्थक ईरान ही था। *ऐसे में, ईरान के भीतर पश्चिमी साम्राज्यवाद के विरुद्ध नफ़रत के कारण इस दमनकारी इस्लामी शासन का एक समर्थन आधार भी मौजूद रहा है।* अमेरिकी हमले ने इस सामाजिक आधार को और अधिक विस्तारित कर दिया है। कहना ग़लत न होगा कि अगर अमेरिकी साम्राज्यवाद का दबाव न होता, तो इस बात की प्रबल सम्भावना थी कि ईरान की दमनकारी इस्लामी कट्टरपंथी सत्ता को ईरानी जनता कालान्तर में स्वयं ही उखाड़ फेंकती। यही सम्भावना कई लातिन अमेरिकी देशों में भी मौजूद रही है। *लेकिन साम्राज्यवादी शोषण व दमन कई बार ऐसी दमनकारी सत्ताओं के लिए सीमित अर्थों में जनता को अपने पक्ष में गोलबन्द करने का उपकरण बन जाता है, जो विश्व राजनीति में वर्चस्वकारी साम्राज्यवादी शक्ति के विरुद्ध खड़ी हों।*

बहरहाल, किसी भी देश में किसी भी सत्ता को क़ायम करना, उसका समर्थन करना या उसका विरोध करना, उसे उखाड़ फेंकना उस देश की जनता का काम होता है। इसमें अमेरिका या किसी भी दूसरे देश को हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है। अमेरिका ने अपने से ही दुनिया में "लोकतन्त्र" स्थापित करने का जो ठेका ले रखा है, उसकी असलियत सभी जानते हैं। *वह कभी पश्चिम एशिया की शाहों-शेख़ों की सत्ताओं के विरुद्ध लोकतन्त्र स्थापित करने की बात क्यों नहीं करता जो कि भयंकर तानाशाह क़िस्म की राजतान्त्रिक सत्ताएँ हैं? वह फ़िलिप्पींस में पहले दुतेर्ते और अब मार्कोस जूनियर जैसी तानाशाहाना सत्ताओं को समर्थन क्यों देता है? वह थाईलैण्ड के सैन्य शासन को समर्थन क्यों देता है? उसने वर्षों तक चीले के बर्बर सैन्य तानाशाह पिनोशे को समर्थन क्यों दिया? और तो और, ख़ुद अमेरिका में काले लोगों, लातिनी लोगों, अन्य प्रवासियों और स्वयं श्वेत ग़रीब आबादी के प्रति अमेरिकी सत्ता कितनी लोकतान्त्रिक है, ये सभी जानते हैं। अभी बॉर्डर पेट्रोल पुलिस व ट्रम्प की अर्द्धफ़ासीवादी मिलिशिया आइस (ICE) जिस प्रकार अमेरिकी नागरिकों का क़त्लेआम कर रहे हैं, वह जगज़ाहिर है।* **इसलिए जब भी अमेरिका कहीं "लोकतन्त्र" स्थापित करने की बात करे, तो तुरन्त पता करें कि कहीं उस देश में प्राकृतिक गैस, तेल, या खनिजों के भण्डार तो नहीं हैं? कहीं वह देश अपना विदेशी व्यापार डॉलर को छोड़कर किसी अन्य मुद्रा में तो नहीं कर रहा है? कहीं वह देश स्वयं रूस या चीन जैसा शक्तिशाली देश होने के बजाय, अपेक्षाकृत पिछड़ा, कमज़ोर या छोटा देश तो नहीं है?** अगर ऐसा है तो पूरी सम्भावना है कि वहाँ "लोकतन्त्र ख़तरे में" होगा और जल्द ही अमेरिका वहाँ "लोकतन्त्र" स्थापित करने की कोशिश करेगा, जैसा कि उसने अफ़ग़ानिस्तान, लीबिया, इराक़, आदि में किया है! सारी दुनिया जानती है कि यह अमेरिकी साम्राज्यवादी हितों और आम तौर पर पश्चिमी साम्राज्यवादी हितों के लिए तमाम देशों की आज़ादी और सम्प्रभुता को निगलने के लिए किये जाने वाले हमले होते हैं, ताकि इन देशों को बेरोक-टोक साम्राज्यवादी लूट की चरागाह बनाया जा सके।

मज़दूर वर्ग का स्पष्ट नज़रिया यह है कि किसी भी देश को किसी अन्य देश में "लोकतन्त्र" स्थापित करने, किसी दमनकारी सत्ता को हटाने आदि के नाम पर हमला करने, या किसी भी रूप में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है। यह उस देश की जनता का कार्यभार होता है कि वह किसी सत्ता को स्थापित करे या उखाड़ फेंके। यदि किसी देश ने किसी अन्य देश पर हमला करके क़ब्ज़ा किया हो, तो वह देश स्वयं हमलावर माना जायेगा और उसके क़ब्ज़े से किसी देश को स्वतन्त्र कराने के लिए किसी अन्य देश द्वारा हस्तक्षेप एक दूसरा मसला है और निश्चित स्थितियों में वह बिल्कुल सही हो सकता है। मसलन, सोवियत यूनियन की सेनाओं ने हिटलर के नात्सी जर्मनी को हराकर यूरोप के कई देशों को मुक्त किया। लेकिन अगर ऐसी स्थिति न होती, तो सोवियत यूनियन का यह काम नहीं था कि वह ख़ुद जर्मनी पर हमला कर जर्मनी को नात्सी शासन से मुक्त कराये। यह जर्मन जनता का कार्यभार था, चाहे वह उसमें सफल हो पायी हो या न हो पायी हो। *इस काम में कोई अन्य देश विचारधारात्मक व राजनीतिक तौर पर संघर्षरत जनता को समर्थन दे सकता है, किसी अन्य साम्राज्यवादी देश द्वारा संघर्षरत जनता के विद्रोह को दबाने के लिए किये जाने वाले हस्तक्षेप को रोक सकता है, लेकिन स्वयं उस देश की जनता को किसी तानाशाह से मुक्त करना, स्वयं उस देश की जनता का काम होता है।* **इसलिए हम हर हालत में किसी भी देश में किसी भी बहाने के नाम पर साम्राज्यवादी हस्तक्षेप की मुख़ालफ़त करते हैं।** यह अमेरिका को दिव्य रूप से प्राप्त अधिकार नहीं है कि वह तय करे कि किस देश में किसका और कैसा शासन हो। यह हर देश की जनता को तय करना होता है।

वैसे जिस बहाने के नाम पर यह हमला किया गया, यानी ईरान को आणविक हथियार विकसित करने से रोकने के नाम पर, वह बहाना ही विचित्र और असमानतापूर्ण है। **अमेरिका के पास आणविक हथियार हैं, पश्चिम एशिया में उसके टट्टू इज़रायल के पास आणविक हथियार हैं, उसके सहयोगी साम्राज्यवादी देशों ब्रिटेन, फ्रांस, आदि के पास आणविक हथियार हैं तो वे कैसे तय कर सकते हैं कि ईरान के पास आणविक हथियार न हों?** या तो समूची दुनिया को आणविक हथियारों से मुक्त किया जाय, या फिर हर देश को अपनी सुरक्षा के लिए ऐसे हथियार विकसित करने का अधिकार होना चाहिए! *निश्चित रूप से, आम तौर पर मज़दूर वर्ग का नज़रिया आणविक हथियारों और जनसंहार के अन्य हथियारों के विरुद्ध है। लेकिन यह दुनिया में एकसमान ही लागू किया जा सकता है। कुछ देशों को ऐसे हथियार रखने का अधिकार हो और बाक़ी देशों को नहीं, यह चल ही नहीं सकता है।*

वैसे तो ईरान आणविक हथियार विकसित करने की बात से लगातार इंकार करता रहा था, लेकिन अगर वह ऐसा वाक़ई कर भी रहा था, तो इस पर बोलने का अमेरिका या इज़रायल को कोई अधिकार नहीं है। एक पूँजीवादी दुनिया में यह एक आज़ाद देश का अपना अधिकार है। लेकिन 1945 के बाद जो विश्व राजनीतिक व्यवस्था अमेरिकी प्रभुत्व के मातहत अस्तित्व में आयी, उसमें समानता नाम की कोई चीज़ कभी थी ही नहीं। उसके पहले भी नहीं थी, लेकिन 1945 में आये ब्रेटनवुड्स तन्त्र ने समानता के किसी भी भ्रम को समाप्त कर दिया। आज उस ब्रेटन वुड्स व्यवस्था के नियमों

(पेज 14 पर जारी)

ईरान पर अमेरिका-इज़रायल द्वारा थोपा गया साम्राज्यवादी युद्ध अमेरिकी साम्राज्यवाद और इज़रायली सेटलर उपनिवेशवाद की शर्मनाक हार के साथ ख़त्म होगा

(पेज 13 से आगे)

का भी कोई अर्थ नहीं रह गया है! वेनेज़ुएला पर हमला कर उसके चुने गये राष्ट्रपति को अगवा कर लिया जाना, ईरान पर एकतरफ़ा तरीक़े से हमला कर दिया जाना, उसके पहले ग़ज़ा में एक लाख से ज़्यादा फ़िलिस्तीनियों का क़त्ले-आम कर दिया जाना, अन्तरराष्ट्रीय अदालत में वारण्ट निकलने के बावजूद नेतनयाहू व अन्य हत्यारों को खुला घूमने दिया जाना...ये सब अन्तरराष्ट्रीय पूँजीवादी क़ानूनों और व्यवस्था का ही तो उल्लंघन है! लेकिन इन क़ानूनों का दिखावटी पालन भी तभी तक होता है, जब तक साम्राज्यवादी संकट गहराया नहीं होता। *साम्राज्यवादी संकट के गहराने और उसके फलस्वरूप तमाम साम्राज्यवादी देशों में राजनीतिक संकट के गहराने के साथ इन क़ानूनों का दिखावटी पालन भी असम्भव होता जाता है और जनता के सामने इसकी असलियत अधिक से अधिक सामने आती जाती है।* यही आज हो रहा है।

जो भी हो, ईरान पर हमला अमेरिका और इज़रायल की भारी भूल साबित हो रहा है। ईरान ने अमेरिकी हमले का मुँहतोड़ जवाब देते हुए पश्चिम एशिया में अमेरिकी सैन्य ठिकानों को तबाह या क्षतिग्रस्त कर दिया है, उनकी सेनाओं को इधर-उधर भागने और मुँह छिपाने पर मजबूर कर दिया है, इज़रायल में भयंकर तबाही मचा दी है जो अभी भी जारी है, होर्मूज़ जलसंधि को बन्द करके दुनिया भर में प्राकृतिक गैस व तेल की क़ीमतों का संकट पैदा कर दिया है। हालत यह है कि ट्रम्प रोज़ कभी यूरोप व जापान के सामने यह रास्ता खुलवाने के लिए गिड़गिड़ा रहा है, तो कभी चीन व रूस के सामने। कभी वह ईरान को युद्धविराम के सन्देश ओमान के रास्ते भिजवा रहा है, तो कभी पाकिस्तान से मध्यस्थता कर युद्धविराम करवाने की अपील कर रहा है। लेकिन ऊपर से ट्रम्प ईरान में युद्ध के लक्ष्य के पूरा होने का दावा कर रहा है, उनकी सेना, हवाई शक्ति आदि को नष्ट कर देने की बात कर रहा है, जो कि उसकी आदत है: बड़बोले झूठे दावे करना। सारी दुनिया ट्रम्प पर हँस रही है, ठीक उसी तरह जैसे सारी दुनिया और हमारा देश इस समय मोदी पर हँस रहा है। ईरान जिस तरह से अपने हमलों की बारम्बारता और शक्ति बढ़ाता जा रहा है उससे स्पष्ट है कि ट्रम्प के ये दावे शर्मनाक स्थिति को छिपाने के लिए किये जाने वाले प्रयास हैं। ईरान अपनी तरफ़ से वार्ता का कोई प्रस्ताव नहीं भेज रहा है और ट्रम्प के इन दावों को ख़ारिज कर रहा है कि युद्धविराम को लेकर उससे कोई बात हुई है। वह ऐसी बात करने की फ़िलहाल कोई इच्छा भी ज़ाहिर नहीं कर रहा है। उसने शर्त रखी है कि कोई भी बात तभी होगी जब पश्चिम एशिया से अमेरिकी सैन्य ठिकानों को हटाया जाय और स्थायी तौर पर सैन्य हस्तक्षेप की सम्भावना को ख़त्म किया जाय, फ़िलिस्तीनी जनता का क़त्ले-आम और क़ौमी दमन बन्द किया जाय और इज़रायल के कब्ज़े और हमले को रोका जाय।

ईंधन का संकट दुनिया के तमाम देशों में गहराने लगा है। ईरान अपने मित्र देशों के ईंधन के जहाज़ों को जाने दे रहा है, लेकिन बाक़ी सारी दुनिया के लिए उसने होर्मूज़ का रास्ता बन्द कर रखा है। अमेरिका या किसी देश में यह औक़ात नहीं है कि होर्मूज़ जलसन्धि पर ईरान से निपट पाये और उसे खुलवा पाये। अमेरिकी लोग ईंधन की भारी खपत करते हैं और पश्चिम एशिया के ईंधन पर पूरी अर्थव्यवस्था ही बुरी तरह से निर्भर है। यही हालत यूरोप के साम्राज्यवादी देशों की भी है। रूस ईंधन के मामले में कमोबेश आत्मनिर्भर है और चीन को ईंधन की आपूर्ति में कोई कमी नहीं की गयी है। इसलिए उन्हें ईरान द्वारा की गयी इस नाकेबन्दी से कोई असर नहीं पड़ रहा। **भारत के प्रधानमन्त्री मोदी ने ख़ुद अपने और अपने मन्त्रियों के एप्स्टीन फ़ाइल में फँसे होने और अपने चहेते अडाणी के अमेरिका में फर्जीवाड़े के केस में फँसे होने के कारण, भारत की विदेश नीति में एक परिवर्तन कर अपने आपको सीधे अमेरिकी-इज़रायली खेमे के नज़दीक कर दिया था। यह भयंकर मूर्खता अब रंग ला रही है।** मोदी हर दूसरे रोज़ ईरान के नेता पेज़ेशकियान को फ़ोन कर ईंधन आने देने के लिए गिड़गिड़ा रहे हैं, लेकिन कोई फ़ायदा नहीं हो रहा है। देश की जनता एलपीजी की कमी के कारण त्राहिमाम कर रही है, और कुछ राज्यों में जो चुनाव आने वाले हैं, उसके बाद पेट्रोल और डीज़ल की क़ीमतों में भी मोदी सरकार भारी बढ़ोत्तरी निश्चित ही करेगी। **मोदी ने 23 मार्च को संसद में बोल ही दिया है कि जनता को कोरोना में पैदा हुए हालात जैसे हालात के लिए तैयार रहना चाहिए!**

ईरान युद्ध के मामले पर भी चुप्पी साधे रखना और अमेरिका-इज़रायल को मौन समर्थन देना भारतीय पूँजीपति वर्ग का आम सहमति का फ़ैसला नहीं था। यह मोदी और उसके क़रीबी गिरोह के आपसी हितों के मद्देनज़र लिया गया फ़ैसला था, जो एप्स्टीन फ़ाइल्स और अडाणी फ़ाइल्स में फँसे होने के कारण मोदी-शाह ने अपनी सत्ता को बचाने के लिए लिया है। यही वजह है कि भारतीय पूँजीपति वर्ग के शासक ब्लॉक की एकता में भी स्पष्ट दरारें दिखायी दे रही हैं, सत्ता की बची-खुची जनवैधता तेज़ी से घट रही है और यह भारतीय पूँजीपति वर्ग को तेज़ी से एक नये आन्तरिक राजनीतिक संकट की ओर ले जा रहा है। अगर मोदी सरकार की विदेश नीति इसी प्रकार बनी रही, तो यह राजनीतिक संकट बढ़ता ही जायेगा। यह अपनी ख़ुद की कुर्सी बचाने के लिए भारतीय फ़ासीवाद के 'सुप्रीम लीडर' मोदी द्वारा की गयी समझौतापरस्ती और मूर्खता है, जिसकी क़ीमत अब देश की जनता चुका रही है और आगे और ज़्यादा चुकायेगी। ऐसे माहौल में फिर से सारा ठीकरा ईरान युद्ध पर फोड़ने की कोशिश की जायेगी, हिन्दू-मुसलमान का शोर मचाया जायेगा, समूचा गोदी मीडिया अपनी दलाली को नये चरम पर ले जायेगा और झूठ की ऐसी बारिश करेगा कि हर सच की आवाज़ को उसमें डुबा दिया जाय।

बहरहाल, अभी स्थिति यह है कि अमेरिका-इज़रायल यह युद्ध हार रहे हैं। हताशा में वे ईरान की आम नागरिक जनता पर बमबारी कर रहे हैं जिसमें डेढ़ हज़ार से ज़्यादा ईरानी मारे जा चुके हैं। लेकिन ईरान की मिसाइल क्षमता और सैन्य क्षमता पर उनके वार का असर बेहद सीमित है, जो ईरान के बढ़ते हमलों से साबित हो रहा है। अमेरिका और इज़रायल अपने मारे गये सैनिकों व नागरिकों की सही संख्या को नहीं बता रहे हैं। उनके भी सैंकड़ों में होने को कई स्वतन्त्र एजेंसियों ने पुष्ट किया है। ईरान ने होर्मूज़ का रास्ता बन्द कर विश्व साम्राज्यवाद के सरगना अमेरिका की आर्थिक नब्ज़ पकड़ ली है। ट्रम्प छटपटा रहा है और अपनी भयंकर भूल से किसी तरह इज़्ज़त बचाकर निकलने की कोशिश में लगा है। इज़रायल को यह भय सता रहा है कि अगर अमेरिका किसी सन्धि या वार्ता के बाद युद्ध से पीछे हट जाता है, तो वह क्या करेगा? ईरान के सामने अकेले टिकने की उसकी एक दिन की भी औक़ात नहीं है और अप्रत्यक्ष अमेरिकी सहायता भी ईरान से युद्ध में उसे बचा नहीं सकती है। यह पिछले साल 12 दिन के युद्ध के दौरान भी साबित हो गया था, जब ईरान पर हमला करने के बाद ईरान के जवाबी हमले से बिलबिलाया इज़रायल छाती पीटते अमेरिका के पास मदद के लिए भागा था। रूस व चीन की धुरी ने प्रत्यक्ष हस्तक्षेप नहीं किया है, लेकिन एक लाल रेखा खींच दी है: अगर इज़रायल आणविक हथियारों को इस्तेमाल करता है, तो वे भी वैसा ही जवाब स्वयं इज़रायल को देंगे या ईरान के ज़रिये देंगे। इसलिए, आणविक हथियारों का इस्तेमाल होने की सम्भावना नगण्य है। इसलिए अमेरिका के हार के साथ "जीत गया-जीत गया" चिल्लाते हुए भागने के बाद इज़रायल के पास भी अन्त में युद्ध से भागने के अलावा कोई विकल्प नहीं बचेगा।

कुल मिलाकर, यह युद्ध अमेरिकी साम्राज्यवादी वर्चस्व को मज़बूत करने के बजाय, उसके जारी ह्रास को और त्वरित करने का काम कर गया है। इज़रायल का भावी अस्तित्व हमेशा से प्रश्नों के घेरे में था, लेकिन अब यह साफ़ होता जा रहा है कि आने वाले वर्षों या दशकों के दौरान इस सेटलर उपनिवेशवादी राज्य का ख़ात्मा तय है। *स्वयं इज़रायली पत्रकार, इतिहासकार, बुद्धिजीवी और उसके शासक वर्ग के लोग यह दबे स्वर में मान रहे हैं कि ज़ायनवाद एक राजनीतिक विचारधारा व प्रतिक्रियावादी फ़ासीवादी नस्लवादी आन्दोलन के तौर पर अपने अन्तिम चरण में है। कुछ यह भी मान रहे हैं इज़रायली सेटलर उपनिवेशवादी राज्य के दिन अब गिने हुए हैं।*

पूँजीवादी विश्व एक भारी उथल-पुथल की ओर बढ़ रहा है। अपनी चौधराहट खोता कोई भी साम्राज्यवादी देश शान्ति के साथ साम्राज्यवादी वर्चस्व का ताज किसी और साम्राज्यवादी ताक़त के सिर नहीं रखता है। वर्चस्व के ढाँचे में कोई भी परिवर्तन बड़े युद्धों या युद्धों के सिलसिले के साथ ही होता है। यह युद्धों का सिलसिला वास्तव में रूस और चीन की साम्राज्यवादी धुरी के उभार के साथ ही शुरू हो गया था। इराक़ युद्ध, अफ़गानिस्तान युद्ध, दूसरा इराक़ युद्ध, यूक्रेन युद्ध, और अब ईरान युद्ध अमेरिका के दीर्घकालिक पराभव के इसी सिलसिले का हिस्सा हैं।

जब भी साम्राज्यवादी संकट गहराता है तो वह विश्व साम्राज्यवाद की सबसे अहम गाँठ यानी फ़िलिस्तीन की क़ौमी आज़ादी के सवाल के क्षेत्र में भी अपने आपको प्रकट करता है। *वजह यह है कि समूचा पश्चिम एशिया विश्व के सर्वाधिक रणनीतिक माल यानी जीवाश्म ईंधन का सबसे बड़ा भण्डार है; साथ ही, वह भूराजनीतिक तौर पर यूरोप, रूस, अफ़्रीका और एशिया के बीच स्थित है। और पश्चिम एशिया में पश्चिमी साम्राज्यवाद के हितों की रक्षा का काम करने वाला लठैत है इज़रायल। और इज़रायल के अस्तित्व के लिए ज़रूरी है फ़िलिस्तीनी क़ौम का निरन्तर दमन, जनसंहार और विस्थापन। और यह दमन, जनसंहार और विस्थापन समूचे अरब जगत में पश्चिमी साम्राज्यवाद के संकट को बेतरह बढ़ा रहा है।* इसके कारण, इन देशों में मौजूद शाहों-शेख़ों की सत्ताएँ भी इन देशों की जनता के बीच भयंकर अलोकप्रिय हैं। यही वजह है कि अरब जगत में होने वाले हर जनउभार, हर आन्दोलन में तमाम सवालों के साथ फ़िलिस्तीन की आज़ादी और इज़रायली सेटलर उपनिवेशवादी राज्य के ख़ात्मे का सवाल अहम होता है। **यही वजह है कि एक छोटे से देश फ़िलिस्तीन का राष्ट्रीय मुक्ति युद्ध विश्व साम्राज्यवाद की एक प्रधान गाँठ के रूप में अपने आपको बार-बार प्रकट करता रहा है और तब तक करता रहेगा जब तक कि फ़िलिस्तीन आज़ाद नहीं हो जाता है।**

ईरान युद्ध पश्चिमी साम्राज्यवाद के पश्चिम एशिया में उखड़ते पाँवों को और तेज़ी से उखाड़ने का काम कर रहा है। निश्चित ही इसका यह अर्थ नहीं है कि यह प्रक्रिया तत्काल ही पूरी हो जायेगी। लेकिन इसकी गति निश्चित ही बढ़ गयी है। अमेरिका और इज़रायल को समझ आ गया है कि ईरान इराक़ नहीं है। वह कहीं ज़्यादा विशाल है, सैन्य तौर पर कहीं ज़्यादा मज़बूत है और उसकी सत्ता का चरित्र भी सद्दाम की सत्ता के चरित्र से भिन्न है। सद्दाम ने पश्चिम एशिया में अपने क्षेत्रीय दबदबे को बनाने के लिए पश्चिमी साम्राज्यवाद से तमाम समझौते भी किये थे, ख़ास तौर पर ईरान से प्रतिस्पर्द्धा के मसले पर। लेकिन इसके विपरीत 1979 के बाद से ईरान एक दमनकारी धार्मिक कट्टरपंथी पूँजीवादी सत्ता होने के बावजूद विश्व पूँजीवाद के विशिष्ट समीकरणों के कारण निरन्तरतापूर्ण तरीक़े से पश्चिमी साम्राज्यवाद के विरुद्ध खड़ा रहा है। फ़िलिस्तीन की आज़ादी का वह बिना शर्त समर्थन करता रहा है। अमेरिकी साम्राज्यवाद और इज़रायली ज़ायनवाद का वह निरन्तर विरोध करता रहा है। *इसकी वजह से घरेलू तौर पर बेहद अलोकप्रिय हो जाने के बावजूद साम्राज्यवादी आक्रमण की सूरत में देश की जनता का एक अच्छा-ख़ासा हिस्सा इस सत्ता के इर्द-गिर्द इस विशिष्ट मसले पर गोलबन्द हो जाता है।* सद्दाम हुसैन की सत्ता के मामले में ऐसी बात नहीं थी। *इसके अलावा, ग़ज़ा व फ़िलिस्तीन से अलग, ईरान सेना व उन्नत हथियारों से वंचित कोई देश भी नहीं है। और तीसरी बात यह कि उसके पीछे रूस की तकनोलॉजिकल और सैन्य शक्ति और चीन की आर्थिक शक्ति भी लगातार एक साये के समान खड़ी है।* इसलिए अमेरिका व इज़रायल के लिए आने वाले दिन काफ़ी बुरे साबित होने वाले हैं, इतना तय है।

इस युद्ध का असर हमारे देश पर भी पड़ रहा है और आगे भी पड़ेगा। मोदी सरकार ने सिर्फ़ अपनी सत्ता बचाने के लिए स्वयं भारतीय पूँजीपति वर्ग की आम सहमति से भी अलग जाते हुए, अपनी विदेश

(पेज 16 पर जारी)

ईरान पर अमेरिकी और इज़रायली साम्राज्यवादी-ज़ायनवादी हमले के मायने

● आनन्द

पिछली 28 फ़रवरी को साम्राज्यवादी अमेरिका और पश्चिम एशिया में उसके लठैत ज़ायनवादी इज़रायल ने सभी अन्तरराष्ट्रीय क़ानूनों की धज्जियाँ उड़ाते हुए बिल्कुल एकतरफ़ा ढंग से ईरान पर हमला कर दिया। ग़ौरतलब है कि इस हमले के ठीक पहले अमेरिका और ईरान के बीच आण्विक हथियारों के मसले को लेकर ओमान की मध्यस्थता में बातचीत चल रही थी और ओमान के विदेश मंत्री के अनुसार बातचीत सकारात्मक दिशा में जा रही थी। लेकिन अमेरिका ने धोखाधड़ी की नयी मिसाल पेश करते हुए ईरान पर हमला करके अपना साम्राज्यवादी चेहरा दुनिया के सामने एक बार फिर से उजागर कर दिया।

यह बात दीगर है कि इस हमले की तात्कालिक वजह विशिष्ट सन्धि-बिन्दु से उत्पन्न हुए राजनीतिक कारक हैं। यह बात आज सामने आ चुकी है कि अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रम्प एप्स्टीन फ़ाइल्स से पैदा हुए राजनीतिक संकट के भँवर में बुरी तरह फँसा हुआ था। इस मसले में ट्रम्प चूँकि व्यक्तिगत तौर पर खुद फँसा हुआ है, इसलिए इस बार इज़राइल इस विशिष्ट मसले की वजह से उसकी बाँह मरोड़ने में कामयाब रहा और ईरान पर हमले के लिए उसने ट्रम्प को मना लिया। यह बात भी किसी से छिपी नहीं है कि जेफ़री एप्स्टीन ख़ुद इज़रायल का एक एजेण्ट था, इसलिए ट्रम्प के तमाम कुकृत्यों में संलिप्तता के प्रमाण इज़रायल के पास होने की पूरी सम्भावना है। इज़रायल पिछले 45 वर्षों से अमेरिका को ईरान पर हमले के लिए उकसाता रहा है। लेकिन अभी तक किसी अमेरिकी राष्ट्रपति ने यह गुस्ताख़ी करने की हिम्मत नहीं की थी। हालाँकि इस गुस्ताख़ी के परिणाम भी अमेरिका और इज़राइल को हर बीतते दिन के साथ झेलने पड़ रहे हैं!

जवाबी कार्रवाई में ईरान ने इस साम्राज्यवादी हमले का मुँहतोड़ जवाब दिया है और उसने इज़रायल पर लगातार मिसाइलें दागकर वहाँ भयंकर तबाही मचायी है जिसकी वजह से बुज़दिल इज़रायली औपनिवेशिक सेना (आईडीएफ़) मुँह छिपाकर इधर-उधर भागती फिर रही है। इसके अलावा खाड़ी के देशों में स्थित अमेरिकी सैन्य अड्डों पर भी ईरान लगातार हमला कर रहा है और उन्हें बड़े पैमाने पर क्षति पहुँचा रहा है। ईरान ने होर्मूज़ जलसन्धि को बन्द करके दुनियाभर में प्राकृतिक गैस व तेल की क़ीमतों का संकट पैदा कर दिया है। अमेरिका में तो यह संकट और भी विकराल रूप ले रहा है क्योंकि अमेरिकी लोग ईंधन की भारी खपत करते हैं और पश्चिम एशिया के ईंधन पर उसकी पूरी अर्थव्यवस्था काफी ज़्यादा निर्भर है। यही कारण है कि ट्रम्प रोज़ कभी यूरोप व जापान के सामने यह रास्ता खुलवाने के लिए गुहार लगा रहा है, तो कभी चीन व रूस को इस मसले पर हस्तक्षेप करने के लिए सन्देश भेज रहा है!

उधर ईरान की जवाबी कार्रवाई से बौखलाकर इज़रायल लेबनान में भी भीषण बमबारी कर रहा है। इस प्रकार समूचा पश्चिम एशिया युद्ध की आग में झुलस रहा है। इस आग की लपटें पूरी दुनिया में तेज़ी से फैल रही हैं क्योंकि भारत और चीन (हालाँकि ईरान द्वारा चीन को ईंधन की आपूर्ति में कोई कमी नहीं की गयी है) सहित दुनिया के तमाम देशों में तेल और गैस का मुख्य स्रोत पश्चिम एशिया के देश ही हैं। इस क्षेत्र में जारी युद्ध की वजह से दुनियाभर में भीषण ऊर्जा संकट पैदा हो गया है जो आने वाले दिनों में पूँजीवादी आर्थिक संकट को और ज़्यादा गहराने का काम करेगा। कहने की ज़रूरत नहीं कि इस संकट का सबसे ज़्यादा असर दुनियाभर के मेहनतकश अवाम पर पड़ रहा है। हम अपने देश में भी देख सकते हैं कि रसोई गैस में हो रही किल्लत का असर तो सबपर पड़ा है, लेकिन मज़दूरों के घरों में तो चूल्हा बुझने की नौबत आ गयी है। इसकी वजह न केवल मोदी सरकार की हालिया विदेश नीति है बल्कि उसकी आपराधिक लापरवाही और काहिली भी है। ऐसे में हम मज़दूरों के लिए भी यह लाज़िमी हो जाता है इस युद्ध के कारणों को जाना-समझा जाये और अपना नज़रिया स्पष्ट किया जाये।

ईरान पर हुए साम्राज्यवादी हमले के तात्कालिक कारण

ऊपर हमने चलते-चलते ईरान पर इस साम्राज्यवादी हमले के तात्कालिक कारण की चर्चा की थी। लेकिन यदि हम ईरान पर हुए हमले के तात्कालिक कारणों को एक सही राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में समझना चाहते हैं तो हमें सबसे पहले हाल के महीनों में अमेरिका की राजनीति में हुए कुछ अहम घटनाक्रमों पर नज़र दौड़ानी होगी। ध्यान देने वाली बात यह है कि अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प ने पिछले साल दूसरी बार राष्ट्रपति पद सँभालने से पहले अपनी चुनावी सभाओं में लोगों से वायदा किया था कि सत्ता में आने के बाद वह अमेरिका को विदेशी युद्धों में नहीं झोंकेगा। हालाँकि सत्ता में आने के बाद उसने अमेरिकी साम्राज्यवाद के लगातार गिरते वर्चस्व को सँभालने के लिए अपना असली उग्र रूप दिखाना शुरू कर दिया और ग्रीनलैण्ड से लेकर पूरे अमेरिकी महाद्वीप पर अपना दावा ठोंकने लगा। अभी इसी साल की शुरुआत में ट्रम्प ने वेनेज़ुएला पर साम्राज्यवादी हमला करके उसके राष्ट्रपति निकोलस मादुरो को अगवा कर लिया था। अमेरिका के भीतर उसने प्रवासी मज़दूरों के ख़िलाफ़ मुहिम छेड़ दी जिसके ख़िलाफ़ उसे वहाँ लोगों के विरोध प्रदर्शन का सामना करना पड़ा। इसी बीच अमेरिका के भीतर विदेशी व्यापार सम्बन्धी ट्रम्प की उग्र नीतियों की आलोचनाएँ बढ़ने लगीं और अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने अमेरिका द्वारा अन्य देशों पर लगाये गये बेतहाशा आयात शुल्कों को ग़ैर-क़ानूनी करार दे दिया।

इसके अलावा ईरान पर हमले के पहले जिस तात्कालिक कारण ने ट्रम्प के राजनीतिक संकट को बढ़ाने में सबसे अहम भूमिका अदा कि वह था एपस्टीन फ़ाइल्स का खुलासा होना। अमेरिका में यौन अपराधों से जुड़ा यह बहुत बड़ा मामला सुर्ख़ियों में था जिसमें यह सामने आया कि बच्चियों के यौन शोषण का मानवद्रोही धन्धा चलाने वाले जेफ़री एपस्टीन नामक अमेरिकी व्यवसायी के रिश्ते अमेरिका ही नहीं बल्कि दुनिया के तमाम देशों के शासकों और रईसों के साथ थे जिनमें ट्रम्प भी शामिल था। एपस्टीन फ़ाइल्स के इन ख़ुलासों के बाद डोनाल्ड ट्रम्प के समर्थकों के बीच भी उसकी लोकप्रियता का ग्राफ़ गिरने लगा था और उसकी सत्ता पर ही सवालिया निशान खड़े होने लगे थे। ट्रम्प प्रशासन लगातार इन प्रमाणों को मिटाने के प्रयासों में लगा हुआ है, हालाँकि इसमें अभी उसे पूरी सफलता नहीं मिल पा रही है।

यही वह राजनीतिक परिदृश्य था जिसमें ट्रम्प ने इज़रायल के साथ मिलकर ईरान पर हमला करने का फ़ैसला किया। अगर हम अमेरिकी पूँजीपति वर्ग और उसके शासक ब्लॉक की बात करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि ईरान पर हमले को लेकर उसमें कोई आम सहमति नहीं थी। उल्टे उसका बड़ा हिस्सा इस हमले के ख़िलाफ़ था। हालाँकि युद्ध शुरू होने के बाद वह इससे पीछे हट भी नहीं सकता था क्योंकि यह अमेरिकी साम्राज्यवाद के बढ़ते संकट को और गहरा बना देता।

उधर इज़रायल में नेतन्याहू बहुत पहले से ही ईरान के ख़िलाफ़ युद्ध छेड़ने के लिए ट्रम्प को ललकार रहा था। पिछले साल भी अमेरिका व इज़रायल ने ईरान पर 12 दिनों का युद्ध थोपा था। ग़ज़ा में ढाई साल तक नरसंहार करने के बाद भी इज़रायल अपने मंसूबों में कामयाब नहीं हो सका। हमास व हिज़बुल्लाह के शीर्ष नेतृत्व को ख़त्म करने के बावजूद वह फ़िलिस्तीनी राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष को कोई प्राणान्तक चोट नहीं पहुँचा पाया है। फ़िलिस्तीन के समर्थन में दुनिया की जनता के आन्दोलनों का ही दबाव है कि आज इज़रायल दुनिया में अधिक से अधिक अलग-थलग पड़ता जा रहा है और कई देशों में जनता स्वतःस्फूर्त तरीक़ों से इज़रायली पर्यटकों को भगा रही है। नेतन्याहू ईरान पर हमला करके इज़रायल में युद्धोन्माद बनाये रखना चाहता है ताकि वह प्रधानमंत्री की गद्दी पर बना रहे। उधर ट्रम्प इस मुग़ालते में जी रहा था कि वह वेनेज़ुएला की ही तरह महज़ कुछ दिनों में ईरान में सरकार गिराने या अपने मनमाफ़िक व्यक्ति के हाथ में सरकार की बागडोर सौंपने में कामयाब हो जायेगा और इस प्रकार अमेरिका के भीतर अपनी गिरती लोकप्रियता को फिर से हासिल कर लेगा।

हमले के पहले ही दिन अमेरिका और इज़रायल द्वारा ईरान के शासक व शीर्ष सैन्य अधिकारियों की हत्या करने के बावजूद ईरान की सत्ता नहीं गिरी और उसने तुरन्त ही ज़बरदस्त जवाबी कार्रवाई शुरू कर दी। यही नहीं, उसने इज़राइल और पश्चिम एशिया में अमेरिका के सैन्य ठिकानों को बुरी तरह से तबाह किया है। हर गुज़रते दिन के साथ अमेरिका और इज़रायल को यह बात समझ आ रही है कि ईरान इराक़ नहीं है। 1979 के बाद से ईरान में एक दमनकारी धार्मिक कट्टरपंथी पूँजीवादी सत्ता होने के बावजूद विश्व पूँजीवाद के विशिष्ट समीकरणों के कारण वह लगातार पश्चिमी साम्राज्यवाद के विरुद्ध खड़ा रहा है। फ़िलिस्तीन की आज़ादी का वह बिना शर्त समर्थन करता रहा है। अमेरिकी साम्राज्यवाद और इज़रायली ज़ायनवाद की वह मुसलसल मुख़ालफ़त करता रहा है। इसकी वजह से घरेलू तौर पर बेहद अलोकप्रिय हो जाने के बावजूद साम्राज्यवादी आक्रमण की सूरत में देश की जनता का एक अच्छा-ख़ासा हिस्सा इस सत्ता के इर्द-गिर्द इस विशिष्ट मसले पर गोलबन्द होता रहा है और आज भी हो रहा है। इसके अलावा रूस-चीन की साम्राज्यवादी धुरी भी ईरान के पीछे खड़ी है जो उसे तकनोलॉजिकल और सैन्य मदद के अलावा आर्थिक तौर पर भी मदद पहुँचा रही है।

यह लेख लिखे जाने तक युद्ध को शुरू हुए 20 दिन हो चुके हैं लेकिन अमेरिका और इज़रायल वहाँ सत्ता-परिवर्तन के अपने घोषित लक्ष्य के नज़दीक भी नहीं दिख रहे हैं। ईरान पर हमला अब ट्रम्प के गले की हड्डी बन गया है। अगर ईरान में सत्ता-परिवर्तन के बिना यह युद्ध समाप्त होता है तो इसे अमेरिकी साम्राज्यवाद की एक बड़ी शर्मनाक हार के रूप में देखा जायेगा। जैसा कि हमने कहा है, अमेरिका के शासक वर्ग के बीच भी इरान पर हमले को लेकर कोई सहमति नहीं बन पायी थी। अब अमेरिका के भीतर भी ट्रम्प की छीछालेदर हो रही है। इसलिए अमेरिका व इज़रायल के लिए आने वाले दिन काफ़ी बुरे साबित होने वाले हैं, इतना तय है।

ईरान पर हुए साम्राज्यवादी हमले के ढाँचागत कारण

अमेरिका और इज़रायल द्वारा ईरान पर किये गये हमले के तात्कालिक कारणों को जानने के साथ ही साथ हमें उन ढाँचागत कारणों को भी समझना होगा जो इस प्रकार के साम्राज्यवादी हमलों की जड़ में हैं। आज हम जिस साम्राज्यवादी दुनिया में जी रहे हैं उसमें प्राकृतिक संसाधनों, कच्चे माल के स्रोतों और बाज़ारों पर नियंत्रण के लिए दुनिया के तमाम देशों में साम्राज्यवादी ताक़तों के बीच होड़ मची हुई है। यह होड़ मुख्य रूप से आज के साम्राज्यवाद की दो धुरियों – अमेरिका के नेतृत्व में पश्चिमी साम्राज्यवादी धुरी और चीन व रूस की साम्राज्यवादी धुरी – के बीच जारी है। पश्चिम एशिया में तेल व गैस के अकूत भण्डार होने के कारण यह अन्तर-साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा समय बीतने के साथ लगातार तीखी होती गयी है। विश्व पूँजीवादी व्यवस्था में अपना दबदबा क़ायम रखने के लिए ये साम्राज्यवादी ताक़तें पश्चिम एशिया के देशों में तेल की निकासी से लेकर उसके परिशोधन व यातायात के क्षेत्रों में अपने निवेश को बढ़ाती आयी हैं।

ईरान में तेल और गैस के विशाल भण्डार हैं जिसकी वजह से अमेरिकी साम्राज्यवाद ने अपनी गिद्ध दृष्टि बहुत पहले से ही ईरान पर डाली हुई है। 1953 में अमेरिकी साम्राज्यवादियों ने ईरान की लोकतांत्रिक तरीक़े से चुनी हुई डॉ. मुसद्दक़ की सरकार का तख़्तापलट करके अमेरिकापरस्त मोहम्मद रज़ा शाह पहलवी की सत्ता को स्थापित किया था। परन्तु ईरान में 1979 में हुई इस्लामी क्रान्ति के बाद अमेरिकी साम्राज्यवाद को इस इलाक़े में शाह के रूप में एक प्रमुख सहयोगी को गँवाना पड़ा। ईरान की मौजूदा सत्ता को कमज़ोर करने के लिए अमेरिकी साम्राज्यवाद पिछले कई दशकों से उसपर भीषण आर्थिक प्रतिबन्ध लगाता आया है। इसका नतीजा यह हुआ कि इक्कीसवीं सदी में ईरान की क़रीबी रूस व चीन की उभरती हुई साम्राज्यवादी धुरी से बढ़ती गयी है। यही नहीं, चीन की कम्पनियों ने न सिर्फ़ ईरान में बल्कि खाड़ी के तमाम देशों में भी ज़बर्दस्त निवेश किया है और कई मायनों में वे अमेरिकी व यूरोपीय तेल कम्पनियों को मात दे रही हैं।

दरअसल विश्व में पिछले कुछ समय से जारी घटनाक्रम अमेरिकी साम्राज्यवाद के वर्चस्व के लगातार क्षरित होते जाने की प्रक्रिया को बयान करता है जो प्रक्रिया अब एक नये चरण में पहुँच रही है। अमेरिकी वर्चस्व का ह्रास यूक्रेन युद्ध में रूस के हाथों अमेरिका-नीत नाटो की लगातार जारी हार में और ताइवान व दक्षिण चीन समुद्र के मसले में

(पेज 16 पर जारी)

ईरान पर अमेरिकी और इज़रायली साम्राज्यवादी-ज़ायनवादी हमले के मायने

(पेज 15 से आगे)

भी दिखलायी देता रहा है। उसके पहले, अफ़गानिस्तान और इराक़ से अमेरिका का कायरतापूर्ण पलायन और अफ्रीका में चीनी व रूसी साम्राज्यवाद के समक्ष बार-बार मिल रही रणनीतिक व कूटनीतिक हारों में भी अमेरिकी दबदबे में आयी गिरावट स्पष्ट तौर पर दिखलायी पड़ती है। सच कहें तो आज के दौर में अमेरिका की वैश्विक पूँजीवाद के कांस्टेबल की भूमिका अदा करने की भी औक़ात नहीं रह गयी है। इसके अलावा डॉलर में भी अब पहले के समान वह ताक़त नहीं बची रह गयी है कि उसके ज़रिये अमेरिका पहले की तरह किसी अन्य देश से रिश्तों की शर्तें तय कर सकता हो। मौजूदा साम्राज्यवादी युद्ध में तो अमेरिका ख़ुद पश्चिम एशिया के तमाम देशों में अपने सैन्य अड्डों तक को ईरान के हमलों से नहीं बचा पा रहा है! अन्य पश्चिमी साम्राज्यवादी देश भी खुलकर ट्रम्प के पक्ष में नहीं आ रहे हैं। ये सभी अमेरिकी साम्राज्यवाद की गिरती हालत के ही संकेत हैं।

स्पष्ट है कि उपरोक्त कारणों से पश्चिम एशिया साम्राज्यवाद की दो धुरियों के बीच की प्रतिस्पर्द्धा का मुख्य अड्डा बना हुआ है। इसके अलावा इस क्षेत्र में फ़िलिस्तीन की मौजूदगी मौजूदा साम्राज्यवादी संकट को और गहरा बना देती है। बेशक़ विश्व साम्राज्यवाद की सबसे अहम गाँठ फ़िलिस्तीन की क़ौमी आज़ादी का सवाल ही है। पिछले डेढ़ वर्षों के घटनाक्रम ने इस बात की ताईद एक बार फिर से कर दी है और इस बात की भी ताईद कर दी है कि इज़रायल के सेटलर उपनिवेशवादी राज्य का ख़ात्मा तय है और उसके दिन गिने-चुने बचे हैं। जहाँ तक ईरान का प्रश्न है, तो तेल के विशाल भण्डार की वजह से वह कई दशकों से अमेरिकी साम्राज्यवाद के निशाने पर रहा है, हालाँकि ट्रम्प से पहले कोई भी अमेरिकी राष्ट्रपति ईरान पर हमला करने का दुस्साहस नहीं कर पाया था। ट्रम्प ने वेनेज़ुएला में अपनी सफलता के नशे में चूर होकर और नेतन्याहू के उकसावे में आकर ईरान पर हमला तो कर दिया, परन्तु समय बीतने के साथ यह स्पष्ट होता जा रहा है कि उसके प्रशासन ने इस प्रक्रिया में ईरान की सैन्य क्षमता को कम करके आँका था और इस युद्ध में उतरने से पहले उसकी कोई दीर्घकालिक योजना नहीं थी। रूस व चीन हालाँकि इस युद्ध में प्रत्यक्ष रूप से शामिल नहीं हुए हैं, लेकिन जिस सटीकता के साथ ईरान इज़रायल व खाड़ी के देशों में हमले कर रहा है उससे यह स्पष्ट है कि उसे रूस व चीन से हथियारों, ख़ुफ़िया जानकारी और सैटेलाइट तस्वीरों के रूप में मदद मिल रही है।

पश्चिम एशिया और ईरान में जारी युद्ध के निहितार्थ

पश्चिम एशिया में जारी युद्ध केवल ईरानी जनता की तकलीफ़ों को ही नहीं बढ़ा रहा है बल्कि समूचे पश्चिम एशिया की आम मेहनतकश जनता की मुसीबतों को बढ़ा रहा है। पूँजीवाद-साम्राज्यवाद दुनिया को बर्बादी, अस्थिरता और अनिश्चितता के अलावा कुछ दे भी नहीं सकते हैं। चूँकि रूस और चीन प्रत्यक्ष रूप से इस युद्ध में शामिल नहीं हो रहे हैं इसलिए यह युद्ध किसी विश्व युद्ध की शक़्ल अख़्तियार करता नहीं नज़र आ रहा है। लेकिन इतना तो तय है कि इस क्षेत्रीय युद्ध के भीषण दुष्परिणाम होंगे। पश्चिम एशिया की इस अस्थिरता का असर भारत सहित दुनिया के तमाम देशों में ऊर्जा संकट के रूप में पहले से ही दिखना शुरू हो गया है।

अगर यह युद्ध और लम्बा खिंचता है तो यह संकट और भयावह होता जायेगा जिसका असर मेहनतकश अवाम की ज़िन्दगी और आजीविका पर होगा। भारत के करीब 1 करोड़ लोग खाड़ी के तमाम देशों में काम कर रहे हैं। यह युद्ध सीधे तौर पर उनकी ज़िन्दगी में उथल-पुथल मचा रहा है। विश्व बाज़ार में तेल की क़ीमतों में हो रही बढ़ोत्तरी का असर आने वाले दिनों में भारत में भी पेट्रोल व डीज़ल की बढ़ती कीमतों और बढ़ती महँगाई के रूप में सामने आयेगा जो अर्थव्यवस्था के संकट को और गहराने का काम करेगा। ऐसे में यह शर्मनाक बात है कि हमारे देश का प्रधानमंत्री इस युद्ध को रोकने का प्रयास करने के बजाय इज़रायल और अमेरिका के साथ गलबहियाँ कर रहा था। ईरान पर साम्राज्यवादी हमले के 2 दिन पहले तक नरेन्द्र मोदी इज़रायल के दौरे पर थे और ग़ज़ा के बच्चों के क़त्लेआम को अंजाम देने वाले अन्तरराष्ट्रीय अपराधी नेतन्याहू से गले मिलकर हर हाल में इज़रायल का साथ देने की कसमें खा रहे थे। वैसे देखा जाये तो गुजरात का कसाई अगर ग़ज़ा के कसाई से गले मिल रहा है तो इसमें कोई ताज्जुब की बात नहीं है! अब जब यह स्पष्ट हो गया है कि इस हमले से भारत में ऊर्जा संकट और आर्थिक संकट बढ़ने वाला है, तो शासक वर्गों के तमाम बुद्धिजीवी और कूटनीतिज्ञ विशेषज्ञ भी मोदी सरकार की आलोचना कर रहे हैं। स्पष्ट है कि मोदी सरकार का अमेरिका और इज़रायल की ओर तात्कालिक झुकाव देश की मेहनतकश अवाम के हित में तो बिल्कुल भी नहीं है। साथ ही भारत के पूँजीपति शासक वर्ग के बीच भी मोदी सरकार की वर्तमान विदेश नीति को लेकर आम सहमति नहीं है।

पिछले 20 दिनों के घटनाक्रम से इतना तो स्पष्ट है कि साम्राज्यवादी अमेरिका और ज़ायनवादी इज़रायल ईरान में सत्ता-परिवर्तन के अपने लक्ष्य को पूरा कर पाने की स्थिति में तो बिलकुल भी नहीं हैं। ऐसे में यह युद्ध और लम्बा खिंचने की सम्भावना बढ़ती जा रही है। अगर इस युद्ध के बाद ईरान की मौजूदा सत्ता आन्तरिक कारणों से गिर भी जाती है, जिसकी सम्भावना फ़िलहाल नगण्य ही प्रतीत होती है, तब भी अमेरिकी साम्राज्यवाद के लिए अपनी मनमाफ़िक सरकार बनाना बेहद मुश्किल होगा क्योंकि ऐसी किसी भी अमेरिका-इज़रायल परस्त सरकार के ख़िलाफ़ जनविद्रोह शुरू हो जायेगा और ईरान में गृहयुद्ध जैसी स्थिति पैदा हो जायेगी। अगर ईरान की मौजूदा सरकार इस युद्ध के बाद बच जाती है, जिसकी सम्भावना ही फ़िलहाल ज़्यादा नज़र आ रही है, तो उसके लिए भी युद्ध में हुई तबाही के बाद की परिस्थिति को सँभालना बहुत चुनौतीपूर्ण होगा। जो भी हो, इतना तो तय है कि निकट भविष्य में ईरान की जनता की ज़िन्दगी की बदहाली बढ़ने ही वाली है। साम्राज्यवाद और पूँजीवाद के रहते ईरान की मेहनतकश अवाम की मुश्किलों का समाधान नहीं होने वाला है।

आज जबकि अमेरिका और इज़रायल ने ईरान पर साम्राज्यवादी हमला किया है तो निश्चित रूप से ईरान की जनता के सम्मुख इस समय प्रधान अन्तरविरोध यह साम्राज्यवादी हमला ही है और ऐतिहासिक तौर पर भी ईरान की जनता अमेरिकी साम्राज्यवाद से बेपनाह नफ़रत करती रही है। यही कारण है कि वहाँ की दमनकारी सत्ता अलोकप्रिय होने के बावजूद भी ऐसे तमाम मौकों पर जनता को अपने पीछे गोलबन्द करने में कामयाब रही है। लेकिन यह भी उतना ही सच है कि ईरान के मौजूदा निज़ाम के पास ईरान की जनता की आकांक्षाओं को पूरा करने की क्षमता नहीं है। 1979 की इस्लामी क्रान्ति के बाद से ईरान में जो सत्ता मौजूद है वह पूँजीवाद का विकल्प खड़ा करने के बजाय शिया इस्लाम की चाशनी में लिपटा नवउदारवादी पूँजीवादी विकास का एक ख़ास क़िस्म का मॉडल ही परोस रही है। समय बीतने के साथ ही साथ यह स्पष्ट होता जा रहा है कि ईरान की इस्लामी क्रान्ति वहाँ की जनता की समस्याओं का समाधान कर पाने में फिसड्डी साबित हुई है। ईरान की जनता की समस्याओं का समाधान साम्राज्यवाद और पूँजीवाद विरोधी समाजवादी क्रान्ति के ज़रिये ही मुमकिन है, भले ही इस प्रक्रिया में कितना भी समय लगे। ईरान के मेहनतकश अवाम, छात्रों-नौजवानों और जनपक्षधर बुद्धिजीवियों को आज से ही ऐसी समाजवादी क्रान्ति की तैयारी करनी होगी। इसके अलावा यह भी तय है कि आने वाला वक़्त पूरी दुनिया के लिए ही उथल-पुथल से भरा वक़्त होगा। ईरान के साथ-साथ हमारे देश की क्रान्तिकारी शक्तियों को भी इसके लिए अपनी कमर कस लेनी होगी।

ईरान पर अमेरिका-इज़रायल द्वारा थोपा गया साम्राज्यवादी युद्ध अमेरिकी साम्राज्यवाद और इज़रायली सेटलर उपनिवेशवाद की शर्मनाक हार के साथ ख़त्म होगा

(पेज 14 से आगे)

नीति में जो मूर्खतापूर्ण क़दम उठाये हैं, उसका ख़ामियाज़ा अभी से ही देश के मेहनतकश लोग भुगत रहे हैं। मोदी ने ख़ुद ही बोल दिया है कि कोरोना जैसे हालात के लिए जनता तैयार रहे! ऐसे में, *इस सरकार और इसकी जनविरोधी नीतियों के विरुद्ध देश की जनता को जुझारू एकजुटता बनानी होगी, हिन्दू-मुसलमान के झगड़े और दंगे पैदा करने की संघ परिवार और भाजपा सरकार की हर साज़िश को नाकाम करना होगा, गोदी मीडिया का पूर्ण बहिष्कार करना होगा और अपने अधिकारों के लिए धर्म और जाति के बन्धनों और बँटवारों को तोड़कर सड़कों पर उतरना होगा। साथ ही, दुनिया भर के मेहनतकश अवाम और दमित क़ौमों के साथ हमें अपनी एकजुटता ज़ाहिर करते हुए अमेरिकी साम्राज्यवाद और इज़रायली ज़ायनवाद का पुरज़ोर विरोध करना होगा। जिस देश की जनता अन्य देशों की जनता पर होने वाले ज़ुल्म के ख़िलाफ़ नहीं बोलती वह ख़ुद भी अपने देश के हुक्मरानों के ज़ुल्म का शिकार होते रहने के लिए अभिशप्त होती है।*

दुनिया भर की मेहनतकश जनता की एकजुटता आज साम्राज्यवाद के लिए एक चुनौती बन रही है, जैसा कि फ़िलिस्तीन के सवाल पर दुनिया भर में हुए आन्दोलनों ने दिखलाया। स्पेन, आयरलैण्ड, निकारागुआ, वेनेज़ुएला, कोलम्बिया आदि कई देशों की पूँजीवादी सत्ताओं को जनआन्दोलनों के दबाव में इज़रायल से तमाम रिश्ते तोड़ने भी पड़े। यह शासक वर्ग की प्रगतिशीलता नहीं है, बल्कि दुनिया की जनता के आन्दोलनों का ही दबाव है कि आज इज़रायल दुनिया में अधिक से अधिक अलग-थलग पड़ता जा रहा है। *हमारे देश में फ़िलिस्तीन के सवाल पर जागरूकता की ऐतिहासिक तौर पर कमी रही है और साथ में मोदी सरकार के साम्प्रदायिक फ़ासीवादी एजेण्डा के तहत यह जागरूकता और भी कम हुई थी।* **लेकिन इस बार ग़ज़ा में हुए जनसंहार ने भारतीय जनता के एक विचारणीय हिस्से में भी यह जागरूकता पैदा करना शुरू कर दिया है। 'फ़िलिस्तीन के साथ एकजुटता में भारतीय जन' (आईपीएसपी) व 'बीडीएस इण्डिया' जैसे जनसंगठनों व अभियानों और 'भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी' (आरडब्ल्यूपीआई) ने इसमें विशेष भूमिका निभायी है। ईरान युद्ध के मसले पर भी देश के इन संगठनों ने सबसे पहले आवाज़ उठायी।** नतीजतन, देश की जनता में इन मसलों को लेकर जागरूकता बढ़ी है, संघी प्रचार और साम्राज्यवादी प्रचार का असर पहले से कम हुआ है और अधिक से अधिक लोग साम्राज्यवादी अमेरिका, ज़ायनवादी इज़रायल और हमारे देश में मौजूद संघी फ़ासीवाद व उनके गठजोड़ की असलियत को समझ रहे हैं। ऐसा इसलिए भी हो रहा है कि देश की जनता के जीवन पर इस गठजोड़ के विनाशकारी प्रभावों को भी स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है।

ईरान युद्ध विश्व की राजनीति में एक नयी करवट की ओर ले जा रहा है। इस युद्ध के बाद साम्राज्यवाद के वैश्विक समीकरणों में निश्चित ही परिवर्तन की प्रक्रिया आगे बढ़ेगी। *इससे सर्वाधिक फ़ायदा रूस-चीन साम्राज्यवादी धुरी को मिलेगा और सबसे ज़्यादा नुक़सान अमेरिका-ब्रिटेन धुरी व यूरोपीय संघ धुरी को होगा।* पश्चिमी साम्राज्यवाद की दोनों ही धुरियों के बीच की और उनकी आन्तरिक एकता भी भयंकर दबाव में है। *नतीजतन, आने वाले समय में साम्राज्यवाद का राजनीतिक संकट और गहरायेगा और कालान्तर में इससे भी बड़े युद्धों को जन्म देगा।* ये युद्ध पूरी दुनिया में ही जनता के लिए भयंकर स्थितियाँ पैदा करेंगे लेकिन विशेष तौर पर सापेक्षिक रूप से पिछड़े पूँजीवादी देशों में जनअसन्तोष बेहद तेज़ी से बढ़ेगा। क्रान्तिकारी शक्तियों को इस आने वाले समय की तैयारी तत्काल करनी होगी। मज़दूर वर्ग के हिरावल को आने वाले उथल-पुथल के लिए अपने आपको तैयार करना होगा।

ईरान पर अमेरिका-इज़रायल के कायराना साम्राज्यवादी-ज़ायनवादी हमले के ख़िलाफ़ और ईरानी जनता के समर्थन में देशव्यापी विरोध प्रदर्शन !

● बिगुल संवाददाता

3 मार्च को भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) द्वारा अमेरिका-इज़रायल के साम्राज्यवादी-ज़ायनवादी गठजोड़ द्वारा ईरान पर किये गये कायराना और बर्बर आक्रमण के ख़िलाफ़ देशव्यापी विरोध प्रदर्शन आयोजित किया गया। इसमें फ़िलिस्तीन के साथ एकजुट भारतीय जन (IPSP), बिगुल मज़दूर दस्ता, दिशा छात्र संगठन, नौजवान भारत सभा तथा अन्य प्रगतिशील जनसंगठनों ने भाग लिया। इसके अलावा साम्राज्यवादी-ज़ायनवादी गठजोड़ द्वारा उत्पन्न गम्भीर और अस्थिर संकट को लेकर चिन्तित नागरिकों, राजनीतिक कार्यकर्ताओं, छात्रों और प्रोफ़ेसरों ने भी इस विरोध प्रदर्शन में भागीदारी की। यह विरोध प्रदर्शन देश की राजधानी दिल्ली के अलावा पुणे, हैदराबाद इत्यादि अन्य जगहों पर किया गया।

विरोध प्रदर्शन की शुरुआत ईरान की आम मेहनतकश जनता के साथ एकजुटता में क्रान्तिकारी नारों के साथ की गयी। इसके बाद वक्ताओं ने इस मामले पर भारत सरकार की चुप्पी भरे रवैये की मुखर आलोचना की और ईरान पर अमेरिका-इज़रायल के इस साम्राज्यवादी युद्ध की कड़ी निन्दा की गयी। अलग-अलग संगठनों के वक्ताओं ने ईरान की जनता के साथ अपनी अटूट एकजुटता और समर्थन व्यक्त किया। वक्ताओं ने कहा कि ग़ाज़ा में चल रहे नरसंहार के बावजूद प्रधानमंत्री मोदी का हालिया इज़रायल दौरा भारतीय शासक वर्ग के हितों को दर्शाता है, न कि आम मेहनतकश जनता के। भारत जैसे देश, जो खुद साम्राज्यवाद का शिकार रहे हैं, उनके हित ईरान और पश्चिम एशिया की मेहनतकश जनता के साथ जुड़े हुए हैं। भारत का पक्ष हमेशा से ही फ़िलिस्तीन और ईरान के साथ रहा है। लेकिन आज फ़ासीवादी मोदी सरकार अम्बानी-अडानी जैसे पूँजीपतियों के हितों को पूरा करने के लिए अमेरिका और हत्यारे इज़रायल के साथ खड़ी है। ये सीधे तौर पर हमारे देश के साथ गद्दारी है। **भारत, जिसकी मिट्टी में भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु, चन्द्रशेखर आज़ाद, बटुकेश्वर दत्त, भगवतीचरण वोहरा जैसे क्रान्तिकारियों ने जन्म लिया, साम्राज्यवाद मुर्दाबाद का नारा बुलन्द किया, उस भारत का हित कभी भी साम्राज्यवादी ताक़तों के साथ नहीं हो सकता है। लेकिन सावरकर के वंशज इस बात को बिल्कुल नहीं समझ सकते हैं।** इन्होंने खुद अपने देश के क्रान्तिकारियों के साथ गद्दारी करके पूरे आज़ादी के आन्दोलन में अंग्रेज़ों की जी-हुज़ूरी करने का काम किया है। प्रधानमंत्री मोदी भले ही इज़रायल में जाकर उसका समर्थन करें या उसे "फादरलैंड" का दर्जा दें लेकिन भारत की आम मेहनतकश जनता हमेशा से ही फ़िलिस्तीन और ईरान की जनता के साथ खड़ी है और खड़ी रहेगी।

प्रदर्शन के दौरान वक्ताओं ने कहा कि इस युद्ध के ज़रिये अमेरिकी साम्राज्यवाद अपने लठैत ज़ायनवादी इज़रायल के साथ मिलकर पश्चिम एशिया में एक के बाद एक आक्रामक विस्तारवादी मंसूबों को अंजाम दे रहा है। कच्चे माल, प्राकृतिक संसाधनों और बाज़ारों पर क़ब्ज़े की इस लड़ाई में आम जनता पिस रही है और युद्ध का सीधा असर उनके ऊपर पड़ रहा है। ईरान के साथ कई हफ़्तों तक चली बातचीत के नाटक के बाद, अमेरिकी साम्राज्यवाद ने अपने पश्चिम एशियाई गुण्डे इज़रायल के साथ मिलकर 28 फ़रवरी को तेहरान सहित ईरान के विभिन्न शहरों पर बमबारी कर एक क्रूर साम्राज्यवादी युद्ध छेड़ दिया है। इस युद्ध में सैकड़ों निर्दोष नागरिकों, जिनमें बच्चे भी शामिल हैं, की जान जा चुकी है, साथ ही ईरान के सर्वोच्च नेता आयतुल्ला अली ख़ामेनेई, रक्षा मंत्री और शीर्ष सैन्य नेतृत्व की हत्या कर दी गयी है। जवाबी कार्रवाई में ईरान ने इज़रायल के तेल अवीव, यरुशलम, हाइफ़ा समेत क़तर, यूएई, सऊदी अरब, कुवैत, इराक़, बहरीन और ओमान जैसे खाड़ी देशों में अमेरिकी और इज़रायली सैन्य ठिकानों पर सैकड़ों मिसाइल हमले किये हैं और बिना किसी उकसावे के किए गये इस साम्राज्यवादी हमले का मुँहतोड़ जवाब दिया है। इस तरह पूरा पश्चिम एशिया एक बार फिर विनाशकारी युद्ध में घिर गया है, जिसका ज़िम्मेदार अमेरिका-इज़रायल का साम्राज्यवादी-ज़ायनवादी गठजोड़ है।

यह ध्यान देने योग्य है कि इस युद्ध के लिए पूरी तरह से अमेरिकी साम्राज्यवाद और उसका सहयोगी इज़रायल ज़िम्मेदार हैं। यह युद्ध पूरी तरह से बिना उकसावे के शुरू किया गया है, जबकि पिछले वर्ष 12 दिनों के युद्ध के बावजूद ईरान बातचीत के लिए तैयार था और ओमान की मध्यस्थता में अमेरिका के साथ वार्ता कर रहा था। ट्रंप के नेतृत्व वाला अमेरिकी साम्राज्यवाद एक बार फिर अन्तरराष्ट्रीय क़ानूनों और मानदण्डों को धता बताते हुए विश्वासघाती तरीक़े से आगे बढ़ा है। इससे पहले इसी वर्ष उसने वेनेज़ुएला पर हमला कर उसके राष्ट्रपति निकोलस मादुरो का अपहरण करके भी यह दिखा दिया था कि वह अन्तरराष्ट्रीय क़ानून और राष्ट्रीय सम्प्रभुता की परवाह नहीं करता।

ईरान पर अमेरिका-इज़रायल का यह हमला एक बार फिर साबित करता है कि जब तक साम्राज्यवादी- पूँजीवादी व्यवस्था क़ायम रहेगी, तब तक मानवता को विनाशकारी युद्धों और असीम पीड़ा का सामना करना पड़ेगा। पश्चिम एशिया, विशेषकर ईरान, अपने तेल और गैस संसाधनों के कारण अमेरिकी सैन्य आक्रामकता का शिकार बना हुआ है। इराक, सीरिया और यमन पहले ही इन युद्धों से तबाह हो चुके हैं, और अब ईरान को भी अस्थिरता की ओर धकेला जा रहा है। हालाँकि ईरान की जवाबी कार्यवाई को देखकर अब अमेरिका और इज़राइल को हर बीतते दिन के साथ यह बात स्पष्ट होती जा रही है कि ईरान इराक़ या वेनेज़ुएला नहीं है और यह साम्राज्यवादी युद्ध ख़ुद अमेरिकी साम्राज्यवाद के लिए काफी मंहगा साबित हो रहा है।

एक तरफ डोनाल्ड ट्रंप कह रहे हैं कि यह युद्ध ईरान की महिलाओं की आज़ादी के लिए लड़ा जा रहा है। वहीं दूसरी तरफ़ स्कूल पर बमबारी करके अमेरिका सैकड़ों बच्चियों की हत्या कर रहा है। एपस्टीन फ़ाइल में नाम आने के बाद जिस तरह से पूरी दुनिया में डोनाल्ड ट्रम्प की थू थू हो रही है उससे लोगों का ध्यान भटकाने के लिए ईरान पर इस युद्ध को थोपा गया है। एपस्टीन फ़ाइल के गुनहगारों के मुँह से स्त्री अधिकारों की बात करना निश्चित ही इस सदी की सबसे बड़ी त्रासदी में से एक होगी!

प्रदर्शन के दौरान वक्ताओं ने यह भी कहा कि लोगों को ये बात गाँठ बाँध लेनी होगी कि इस युद्ध के प्रभाव केवल ईरान या पश्चिम एशिया तक सीमित नहीं रहेंगे। तेल और गैस आपूर्ति बाधित होने से वैश्विक क़ीमतों में वृद्धि होगी, जिसका असर भारत सहित पूरी दुनिया पर पड़ेगा। यदि ईरान होर्मुज़ जलडमरूमध्य को बन्द करता है (जोकि बाद में ईरान ने किया भी) या हूती विद्रोही लाल सागर में आपूर्ति रोकते हैं, तो वैश्विक अर्थव्यवस्था को बड़ा झटका लगेगा। इतिहास गवाह है कि साम्राज्यवादी युद्धों की मार हमेशा आम जनता ने झेली है और इसलिए हमें इसका पुरज़ोर विरोध करना चाहिए। साथ ही, मोदी सरकार के जनविरोधी चरित्र के ख़िलाफ़ भी एकजुट होना चाहिए। हमें समझना होगा कि साम्राज्यवाद मानवता को सिवाय युद्ध, तबाही और नरसंहार के कुछ भी नहीं दे सकता है। हमें पिछले अनुभवों से सबक लेना होगा। अमेरिका-इज़रायल द्वारा ईरान पर किये गये विश्वासघाती और बिना किसी उकसावे के साम्राज्यवादी हमले के ख़िलाफ़ एकजुट होकर अपनी आवाज़ बुलन्द करनी होगी।

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) ईरानी जनता के साथ एकजुटता व्यक्त करती है और अमेरिका-इज़रायल के साम्राज्यवादी-ज़ायनवादी गठजोड़ द्वारा किये गये इस कायरतापूर्ण और घृणित आक्रमण के ख़िलाफ़ खड़ी है। कार्यक्रम के दौरान ईरानी जनता के समर्थन में क्रान्तिकारी गीत प्रस्तुत किया गया तथा प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट्स लीग के सदस्यों द्वारा कला के माध्यम से एकजुटता व्यक्त की गयी।

क्यूबा पर तेल प्रतिबन्ध लगाने वाली साम्राज्यवादी ताक़तें मुर्दाबाद!

वेनेज़ुएला और ईरान के बाद ट्रम्प-नीत अमेरिकी साम्राज्यवादी कहर का अगला निशाना क्यूबा है!

पश्चिम एशिया में ईरान के ख़िलाफ़ अमेरिका-इज़राइल द्वारा थोपे गये साम्राज्यवादी युद्ध के तेज़ होने के साथ ही अमेरिकी साम्राज्यवादी कैरेबियाई देश क्यूबा पर तेल प्रतिबन्ध लगाकर उसकी अर्थव्यवस्था को तबाह करने की कोशिश कर रहे हैं। 1959 में क्यूबा की क्रान्ति के बाद से ही क्यूबा अमेरिकी साम्राज्यवाद द्वारा लगाये गये कड़े आर्थिक प्रतिबन्धों का सामना करता रहा है, लेकिन तेल पर लगाया गया यह प्रतिबन्ध ख़ास तौर पर घातक है क्योंकि इसने देश की बिजली आपूर्ति को बाधित कर दिया है। बिजली उत्पादन के लिए क्यूबा की काफ़ी निर्भरता तेल आयात पर ही है, इसलिए अमेरिका द्वारा लगाये गये इस तेल प्रतिबन्ध के कारण गम्भीर बिजली संकट पैदा हो गया है, जो क्यूबाई लोगों के जीवन और आजीविका को बुरी तरह से प्रभावित कर रहा है। क्यूबा की अर्थव्यवस्था ठप्प पड़ गयी है। आज क्यूबा के भीतर एक गम्भीर मानवीय संकट पैदा हो गया है, जो अमेरिकी साम्राज्यवाद की अमानवीय कार्रवाइयों का ही नतीजा है।

क्यूबा में निरन्तर और लम्बे समय से जारी बिजली की कमी ने देश में गम्भीर खाद्य संकट पैदा कर दिया है क्योंकि खाना पकाने से लेकर, इसे लाना-ले जाना और खाद्य सुरक्षा के लिए भी बिजली पर निर्भरता है। तेल पर लगे इस अमानवीय प्रतिबन्ध ने क्यूबा की करीब एक करोड़ की आबादी को भुखमरी के कगार पर पहुँचा दिया है। बिजली की कमी के कारण अस्पतालों में भी ज़्यादातर काम ठप्प पड़ गये हैं। तेल पर लगाया गया यह प्रतिबन्ध देश को स्वास्थ्य संकट की ओर भी ले जाने का काम कर रहा है। बिजली आपूर्ति की कमी के कारण खाद्य सामग्री के बर्बाद होने के अलावा, पानी की आपूर्ति भी प्रभावित हो रही है क्योंकि पानी के पम्प काम नहीं कर रहे हैं। इतना ही नहीं, हवाई ईंधन की कमी के कारण एक टापू पर बसे इस देश में बहुत-सी उड़ानें रद्द हो गयी हैं, जिससे पर्यटकों का आना प्रभावित हो रहा है। यह क्यूबा की अर्थव्यवस्था को बर्बादी की ओर ले जा सकता है, क्योंकि इस देश की पर्यटन पर निर्भरता काफ़ी अधिक है।

अमेरिकी साम्राज्यवादी ताकतों के आगे घुटने न टेकने वाली क्यूबा की जनता को इस मानवीय संकट में धकेलना ट्रम्प-नीत अमेरिकी साम्राज्यवाद की सोची-समझी साज़िश का नतीजा है। ध्यान देने की बात है कि इस साल की शुरुआत में वेनेज़ुएला के राष्ट्रपति का अपहरण करने और वहाँ के तेल भण्डार पर क़ब्ज़ा करने के बाद अमेरिकी साम्राज्यवादी ताकतों ने वेनेज़ुएला से क्यूबा को तेल की बिक्री रोक दी थी। इसके साथ ही ट्रम्प प्रशासन ने उन सभी देशों से अमेरिका आने वाले उत्पादों पर भारी टैरिफ़ (टैक्स) थोप दिये जो क्यूबा को तेल बेच रहे थे। क्यूबा में जारी मानवीय संकट का मुख्य कारण ट्रम्प प्रशासन की यही नीतियाँ हैं।

तेल प्रतिबन्ध से क्यूबा की पहले से ही ख़राब अर्थव्यवस्था को और भी बड़ा झटका लगा है। कोरोना महामारी की वजह से इस देश की अर्थव्यवस्था को काफ़ी नुकसान उठाना पड़ा था क्योंकि इस दौरान पर्यटकों की संख्या में भारी कमी आयी थी। महामारी के नुकसान से क्यूबा अभी उबरा भी नहीं था कि उसे साल 2025 के अन्त में आये तूफ़ान मेलिसा की वज़ह से एक और तबाही का सामना करना पड़ा और अब उसे साम्राज्यवादी ताक़तों द्वारा तेल प्रतिबन्ध की मुसीबत झेलनी पड़ रही है। अमेरिकी साम्राज्यवादियों की अमानवीयता उस वक़्त नंगे तौर पर दिखी जब ईरान पर थोपे गये युद्ध के बीच ट्रम्प ने यह ऐलान किया कि वह "क्यूबा पर कब्ज़ा करने का गौरव" हासिल करेगा! यह बयान अमेरिकी साम्राज्यवादियों की हताशा और उनकी गिरती हुई साख को दिखाता है जिसे स्वीकार करने में वे असमर्थ हैं। यह दिखाता है कि अपने मुनाफ़े की औसत दर को बचाने के लिये साम्राज्यवाद आज मानवीयता को गड्ढे में धकेल रहा है। दुनियाभर के मेहनतकशों का एकजुट संघर्ष ही इन्सानियत को इस साम्राज्यवादी क़हर से बचा सकता है।

भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) अमेरिकी साम्राज्यवाद द्वारा क्यूबा की जनता को इस मानवीय संकट में धकेलने की कड़े शब्दों में भर्त्सना करती है। शुरू से ही क्यूबा की जनता साम्राज्यवादी ताकतों के ख़िलाफ़ संघर्ष में डटी रही है। साथ ही, हम यह भूल नहीं सकते हैं कि संकट के दौर में क्यूबा ने अपने डॉक्टरों व मेडिकल सहायता के ज़रिये दुनियाभर को मदद पहुँचायी है। इस वक़्त क्यूबा में स्थिति गम्भीर है इसलिए, दुनियाभर के मेहनतकशों को क्यूबा की जनता के समर्थन में साथ खड़े होना चाहिए। भारत की जनता की तरफ़ से हम यह माँग करते हैं कि मोदी सरकार ट्रम्प प्रशासन पर दबाव बनाये और क्यूबा के ख़िलाफ़ अमानवीय तेल प्रतिबन्ध हटाने के लिये त्वरित क़दम उठाये। हम यह भी माँग करते है कि क्यूबा की जनता को इस खाद्य, जल और स्वास्थ्य संकट से उबरने के लिए मानवीय मदद पहुँचायी जाये।

– भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) द्वारा जारी बयान

मोदी सरकार का "सरेण्डर" और भारतीय शासक वर्ग का चरित्र

● सनी

हालिया समय में मोदी सरकार की विदेश नीति के कुछ फ़ैसलों और रुख़ के चलते विपक्षी दलों ने नरेन्द्र मोदी के अमेरिका और इज़रायल के आगे "सरेण्डर" पर तीखी टिप्पणी की है। केजरीवाल ने तो मोदी को ट्रम्प का ग़ुलाम भी बता दिया। इस रवैये पर भारत के क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट खेमे की तरफ़ से भी अलग-अलग समझदारी पेश की गयी है। मोदी सरकार की "नतमस्तक" प्रतीत होती विदेश नीति जिस लघुकालिक सन्धि-बिन्दु और जिन आकस्मिक कारणों से पैदा हुई है उसका ठोस विश्लेषण करने की जगह नवजनवादी क्रान्ति के फ्रेमवर्क में फँसे कम्युनिस्टों ने इसे भारतीय पूँजीपति वर्ग के दलाल चरित्र का सत्यापन बता दिया है। यह सच है कि मोदी सरकार का हालिया दिनों में रुख़ 2014 के कार्यकाल से अपनाये गये आम रुख़ से अलग रहा है। मसलन अमेरिका के साथ व्यापारिक सौदा कर मोदी सरकार ने रूस से तेल ख़रीदना बन्द कर दिया। अमेरिका के राष्ट्रपति और उसके सेक्रेटरी द्वारा अमेरिका के साथ व्यापार सौदे पर भारत को "इजाज़त" देना या ट्रम्प का यह कहना कि उसने भारत को "अल्टीमेटम" दिया आदि बयानों को मोदी सरकार के अमेरिका के आगे "नतमस्तक" होने के उदाहरण के तौर पर पेश किया जा रहा है। मोदी सरकार ईरान पर इज़रायल और अमेरिका द्वारा हाल ही में थोपे गये साम्राज्यवादी युद्ध पर चुप रही और खामनेई की हत्या पर भी मोदी सरकार ने तत्काल कोई बयान जारी नहीं किया और इसपर भी चुप्पी साध ली। आइए, मोदी सरकार के इस बदले हुए रुख़ के आधार पर नवजनवादी क्रान्ति फ्रेमवर्क के पैरोकार कम्युनिस्टों द्वारा भारतीय शासक वर्ग को दलाल कहे जाने की बात की जाँच-पड़ताल करते हैं।

सबसे पहली बात तो यह कि मोदी सरकार का यह तात्कालिक रुख़ भारत के पूँजीपति वर्ग का रुख़ नहीं है। मोदी सरकार का यह तात्कालिक रवैया एप्स्टीन फ़ाइल्स में हरदीप पुरी, मोदी और अनिल अम्बानी के नाम आने और अदानी के अमेरिका में भ्रष्टाचार के मुक़दमे के कारण है। भारतीय पूँजीपति वर्ग की अन्य पार्टियाँ और उसके थिंक टैंक से लेकर अन्य प्रतिनिधि मोदी सरकार के आचरण की आलोचना रख रहे हैं। लेकिन फ़िलहाल हम अगर इस तर्क को एक पल के लिए मान भी लें कि मोदी सरकार का तात्कालिक रवैया भारतीय पूँजीपति वर्ग को अमेरिका का दलाल सिद्ध करता है तो हम एक हास्यास्पद उलझन में फँस जाते हैं। नवजनवादी क्रान्ति के पैरोकारों के तर्क के हिसाब से चूँकि भारत ने अमेरिका और इज़रायल के पक्ष में नीतिगत स्तर पर कुछ ऐसे तात्कालिक क़दम उठाये हैं जो कि उसे अमेरिका-इज़रायल का दलाल सिद्ध करते हैं तो हालिया दिनों के घटनाक्रम से यह सवाल भी फिर उठता है कि अमेरिका किसका दलाल है? क्योंकि ईरान पर हमला करने का फ़ैसला अमेरिकी पूँजीपति वर्ग की आम सहमति से लिया गया कोई फ़ैसला नहीं था बल्कि उसके विपरीत था और ट्रम्प ने भी मुख्यतः तात्कालिक वजहों से प्रेरित होकर इस क़िस्म का मूर्खतापूर्ण फैसला लिया है। ट्रम्प के इस रवैये का कारण एप्स्टीन फ़ाइल्स में ख़ुद ट्रम्प का फँसा होना है और यह भी ग़ौरतलब है कि एप्स्टीन फ़ाइल्स के सबसे विवादास्पद हिस्से मोस्साद के पास हैं जिसके चलते इज़रायल ट्रम्प पर दबाव बना रहा है। ट्रम्प और उसके अधिकारियों ने भी ख़ुद यह स्वीकार किया कि इज़रायल के चलते अमेरिका इस युद्ध में शामिल हो रहा है। ईरान युद्ध ने न केवल ट्रम्प के सामाजिक आधार में दरारें पैदा की हैं बल्कि यह अमरीकी पूँजीपति वर्ग के नये राजनीतिक संकट को जन्म दे रहा है। ट्रम्प के 'मेक अमेरिका ग्रेट अगेन' (मागा) खेमे के जो केंट ने 17 मार्च को 'नैशनल काउण्टर टेररिज़्म सेण्टर' के अध्यक्ष के पद से इस्तीफ़ा देते हुए भी यही दुहराया कि ईरान पर युद्ध "मज़बूत इज़रायली लॉबी" के चलते हो रहा है। बहरहाल, अगर मोदी द्वारा तात्कालिक तौर लिये गये फ़ैसलों से भारत अमेरिका का दलाल बन जाता है तो इस तर्क से नवजनवादी क्रान्ति के पैरोकारों को कहना चाहिए कि अमेरिका इज़रायल का दलाल है! आम राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में अमेरिका और इज़रायल का यह सम्बन्ध उलट है! इज़रायल अमेरिका और पश्चिमी साम्राज्यवाद के सैन्य चेकपोस्ट के रूप में उत्तरी अफ़्रीका-पश्चिमी एशिया में बनाया गया कृत्रिम राज्य है क्योंकि इस क्षेत्र में पूँजीवाद के लिए सबसे अहम रणनीतिक माल, तेल, के अकूत भण्डार हैं। दोनों बातें जोड़ने पर हमारे सामने यह समीकरण आता है: अमेरिका इज़रायल का दलाल है पर साथ ही इज़रायल अमेरिका का लठैत भी है! साफ़ है कि इनमें से कोई एक बात ही सही हो सकती है। इस हास्यास्पद तर्क पद्धति को ही आगे बढ़ाते हुए हम कह सकते हैं कि ब्रिटेन के प्रधानमंत्री कीअर स्टारमर अमेरिका का दलाल है! यह उपाधि ख़ुद ब्रिटेन की मीडिया ने दी भी है जिसने ब्रिटेन के प्रधानमंत्री को ट्रम्प की गोदी में बैठने वाला कुत्ता कहा! अतीत में भी टोनी ब्लेयर ने ब्रिटेन की संसद के ख़िलाफ़ जाकर ब्रिटेन को इराक़ युद्ध में अमरीकी हितों के पक्ष में झोंक दिया था। इस तरह तो ब्रिटेन का पूँजीपति वर्ग अमेरिका का दलाल हो जायेगा और वहाँ भी नवजनवादी क्रान्ति की मंज़िल मानी जानी चाहिए! यही बात जर्मनी के चांसलर पर भी लागू की जा सकती है। इन उदाहरणों से हम देख सकते हैं कि नवजनवादी क्रान्ति के पैरोकारों की तर्क-पद्धति किस तरह हमें हास्यास्पद नतीजों पर पहुँचाती है। दरअसल यह विश्लेषण तार्किक विश्लेषण नहीं है; बस अपने दिमाग़ में उपस्थित अवधारणा को विशिष्ट परिघटना पर आरोपित करने का उतावलापन है।

दूसरी बात, हमें यह समझना चाहिए कि फ़ासीवादी पार्टी और धुर-दक्षिणपन्थी पार्टियों और उसके नेतृत्व की अपने वर्ग से सापेक्षिक स्वायत्तता किसी भी अन्य पूँजीवादी दल के मुक़ाबले अधिक होती है। आम तौर पर ही हर राजनीतिक पार्टी अपने वर्ग से सापेक्षिक तौर पर स्वायत्त होती है और पार्टी का नेतृत्व पार्टी से सापेक्षिक तौर पर स्वायत्त होता है। फ़ासीवादी पार्टी और आम तौर पर धुर दक्षिणपन्थी पार्टियों में 'सुप्रीम लीडर' और उसके इर्द-गिर्द खड़ा छोटा-सा गुट पार्टी के नेतृत्व से भी सापेक्षिक तौर पर अधिक स्वायत्त होता है। फ़ासीवादी पार्टियों का संघटन ही 'फ़्यूहरर कल्ट' के इर्द-गिर्द होता है यानी 'फ़्यूहरर कल्ट' फ़ासीवादी पार्टियों के ढाँचे में आन्तरिक तौर पर ही शामिल होता है। भाजपा में मोदी का 'कल्ट' इस तरह ही खड़ा हुआ है। इतिहास में मुड़कर देखें तो जर्मनी में हिटलर का 'कल्ट' खड़ा किया गया था तो इटली में 'ड्यूस' के तौर पर मुसोलिनी का भी 'कल्ट' ऐसे ही खड़ा किया गया था। इस तरह का 'कल्ट' अन्य धुर-दक्षिणपन्थी नेताओं में भी देखा जा सकता है, मसलन पुतिन और ट्रम्प जैसे नेता भी अपनी पार्टी से इस क़िस्म की सापेक्षिक स्वायत्तता रखते हैं। जब किसी आकस्मिक राजनीतिक घटना के चलते 'सुप्रीम लीडर' के हाथ से सत्ता की बागडोर छिनने का ख़तरा मण्डराता है तब वे अक्सर ही अपने वर्ग की चाहत के ख़िलाफ़ जाने से बाज़ नहीं आते हैं। अपनी सत्ता को बचाने के लिए 'सुप्रीम लीडर' की छवि वाले नेता किसी अति तक जाने से भी नहीं चूकते हैं। यही मौजूदा समय में एक तरफ़ मोदी तो दूसरी तरफ़ ट्रम्प के साथ हो रहा है। इस बात को नहीं समझना, फासीवाद व अन्य धुर-दक्षिणपंथी राजनीति की विशिष्ट विशिष्टता को नहीं समझना है।

तीसरी बात यह कि मोदी का तथाकथित "नतमस्तक" रवैया इस "दलाल" पूँजीपति वर्ग की अन्य पार्टियों, थिंक टैंक व उसके अन्य प्रतिनिधियों में नहीं दिखायी दे रहा है। राहुल गाँधी ने भी ख़ुद संसद में यह कहा कि वह यह समझते हैं कि सामान्य परिस्थितियों में मोदी सरकार इस क़िस्म के झुकने का रवैया नहीं दिखाती लेकिन अडानी और एपस्टीन के मसलों के चलते ही मोदी इस क़िस्म का व्यवहार कर रहे हैं। इस बात को कुछ तथ्यों से समझा जा सकता है। मोदी सरकार ने पिछले साल जून में ईरान पर थोपे गए युद्ध में तुरन्त ही ईरान से सम्पर्क स्थापित किया था और दोनों पक्षों को युद्ध ख़त्म करने की सलाह दी थी। इस साल जारी युद्ध में पहले मोदी सरकार ने चुप्पी साधे रखने का काम किया और ईरान से कोई संवाद स्थापित न कर इज़रायल और अमेरिकी युद्ध का ही समर्थन किया था, परन्तु देश के भीतर गैस का संकट बढ़ने पर मोदी सरकार ने खामनेई की मृत्यु पर शोक भी जताया और ईरान के राष्ट्रपति से लेकर विदेश मंत्री से भी कई बार बात की। ट्रम्प द्वारा पिछले साल अगस्त माह में पचास प्रतिशत टैरीफ़ लगाकर मोदी सरकार की बाँह मरोड़ने की कोशिश की गयी और व्यापारिक सौदा करने का दबाव बनाया गया जिसके जवाब में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ख़ुद बीजिंग पहुँच गये और रूस और चीन के साथ व्यापारिक सम्बन्धों को बहाल करने की बात की। यह रवैया आम तौर पर भी 2014 के बाद से मोदी सरकार की विदेश नीति से मेल खाता है। रूस-उक्रेन युद्ध से लेकर ब्रिक्स और एससीओ में भागीदारी और रूस से अमेरिकी दबाव की मुख़ालफ़त करके भी तेल ख़रीदने की नीति मोदी सरकार की ही रही है। वास्तव में 1947 के बाद से भारतीय शासक वर्ग का ऐसा ही रवैया रहा है। निर्गुट आन्दोलन, सूएज़ नहर विवाद से लेकर मोदी सरकार के कार्यकाल में कनाडा के साथ हुए राजनयिक विवाद के दौरान इसे देखा जा सकता है। मोदी सरकार की नीतियों में आया परिवर्तन आकस्मिक है और यह एक विशेष तात्कालिक राजनीतिक सन्धि-बिन्दु की उपज है। जनवरी अन्त में एक तरफ़ अमेरिकी कोर्ट ने अमेरिकी एजेंसी 'यूएस सिक्योरिटीज़ एण्ड एक्सचेंज' कमीशन को अडानी को ई-मेल के ज़रिये भ्रष्टाचार के मुक़दमे का नोटिस भेजने की अनुमति दी और लगभग इस समय ही एपस्टीन फ़ाइल्स में हरदीप पुरी, मोदी और अम्बानी का नाम भी आया। फ़रवरी माह की शुरुआत में ही मोदी सरकार ने अमेरिका से व्यापारिक सौदा कर लिया।

अतः पूँजीपति वर्ग और विशेषतः भारत जैसे सापेक्षिक तौर पर पिछड़े पूँजीवादी देशों के पूँजीपति वर्ग के विशिष्ट राजनीतिक सन्धिबिन्दु से जन्मे आकस्मिक व्यवहार के आधार पर हम उसका चरित्र निर्धारण दलाल पूँजीपति वर्ग के रूप में नहीं कर सकते हैं। अगर इस पैमाने का इस्तेमाल किया जाये तो दुनिया के समस्त पूँजीपति वर्ग दलाल होंगे, मगर तब यह सवाल रह जायेगा: किसके? हमने देखा कि इस पैमाने पर अमेरिका को इज़रायल का दलाल, ब्रिटेन और जर्मनी को अमेरिका और अन्ततः इज़रायल का दलाल कहा जा सकता है! पूँजीपति वर्ग के चरित्र का निर्धारण वर्ग के राजनीतिक अर्थशास्त्र के वैज्ञानिक आधार पर किया जाना चाहिए। राजनीतिक अर्थशास्त्रीय विश्लेषण से साफ़ होता है कि भारत के पूँजीपति वर्ग का चरित्र औद्योगिक-वित्तीय पूँजीपति वर्ग का है और इसे अपने घरेलू बाज़ार पर नियंत्रण चाहिए जिस कारण से यह दलाल हो ही नहीं सकता है।

मोदी सरकार के तात्कालिक विशिष्ट राजनीतिक सन्धि बिन्दु और आकस्मिकता से उपजे फ़ौरी रवैये के आधार पर भारत के पूँजीपति वर्ग के चरित्र का निर्धारण नहीं किया जा सकता है। मोदी सरकार अगर अपने इस रुख़ पर क़ायम रही तो भारत का शासक वर्ग और राज्य एक राजनीतिक संकट की ओर बढ़ेंगे। शासक वर्ग के ब्लॉक की एकता में दरारें पड़ेंगी और सत्ता अपनी जन वैधता खो देगी जो प्रक्रिया आगे चलकर सामाजिक और राजनीतिक, दोनों ही क़िस्म की उथल-पुथल को जन्म दे सकती है। राजनीतिक संकट इस वजह से ही उपजेगा कि भारतीय शासक वर्ग दलाल नहीं है। दलाल शासक वर्ग के भीतर राजनीतिक संकट पैदा होने की कोई गुंजाइश ही नहीं होती है। यही बात अमेरिका में ट्रम्प पर भी लागू होती है। इसलिए जो लोग इस वक़्त मोदी सरकार के तात्कालिक रवैये से दूरगामी राजनीतिक निष्कर्ष निकालने का उतावलनापन दिखा रहे हैं, वे दरअसल राजनीतिक मोतियाबिंद का शिकार हैं।

कार्ल मार्क्स के स्मृति दिवस (14 मार्च) के मौक़े पर

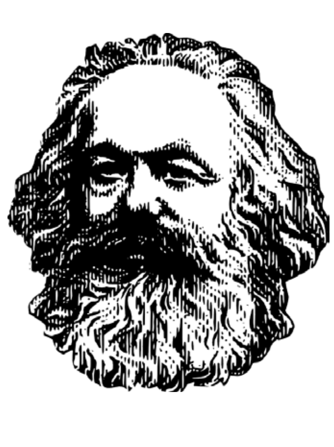

अज्ञान एक राक्षसी शक्ति है और हमें डर है कि यह कई त्रासदियों का कारण बनेगा। सबसे महान यूनानी कवियों ने इसे मीकेन तथा थेब्स के शाही घरानों के जीवन के हृदय विदारक नाटकों में ठीक ही त्रासदीपूर्ण नियति के रूप में चित्रित किया है।

– मार्क्स

क्रान्तिकारी मज़दूर शिक्षणमाला – 32

मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त (खण्ड-2)

अध्याय – 6

पूँजी का टर्नओवर

● अभिनव

यहाँ से मार्क्स *पूँजी* के दूसरे खण्ड के दूसरे भाग की शुरुआत करते हैं। जैसा कि हम पहले बता चुके हैं कि *पूँजी* के दूसरे खण्ड के पहले भाग में मार्क्स उन बुनियादी वैज्ञानिक अवधारणाओं और विश्लेषणात्मक उपकरणों को विकसित करने का काम करते हैं जिनका इस्तेमाल पूँजी के संचरण के अध्ययन के दो बुनियादी पहलुओं को समझने के लिए अनिवार्य है। ये दो बुनियादी पहलू ये हैं: पहला, *पूँजी का टर्नओवर* और दूसरा, *कुल सामाजिक पूँजी का पुनरुत्पादन और संचरण*। दूसरे खण्ड का दूसरा भाग पूँजी के टर्नओवर पर केन्द्रित है। तीसरा भाग कुल सामाजिक पूँजी के पुनरुत्पादन व संचरण के विषय को विस्तार से समझाता है।

दूसरे भाग में मार्क्स पहली बार चल पूँजी व अचल पूँजी की अवधारणाओं को विस्तार देते हैं, इन अवधारणाओं पर क्लासिकीय बुर्जुआ राजनीतिक अर्थशास्त्र व भोंड़े बुर्जुआ अर्थशास्त्र की ग़लतियों की विस्तार से विवेचना करते हैं, पूँजी के अलग-अलग हिस्सों तथा बेशी मूल्य के टर्नओवर पर चर्चा करते हैं और बेशी मूल्य की वार्षिक दर पर टर्नओवर की गति के प्रभावों को स्पष्ट करते हैं। हम क्लासिकीय बुर्जुआ राजनीतिक अर्थशास्त्रियों व भोंड़े बुर्जुआ अर्थशास्त्रियों द्वारा पूँजी के टर्नओवर तथा चल व अचल पूँजी की अवधारणाओं के विषय में की गयी भूलों पर विस्तार से चर्चा नहीं करेंगे और कहीं-कहीं प्रसंगवश उन पर टिप्पणियाँ करेंगे। हमारा मुख्य ज़ोर मार्क्स की वैज्ञानिक अवधारणाओं को विस्तार से समझने पर होगा। इसलिए समूचे दूसरे भाग की हमारी चर्चा पूँजी के टर्नओवर पर मार्क्स की वैज्ञानिक अवधारणों पर केन्द्रित होगी।

पूँजी का टर्नओवर

मार्क्स सबसे पहले हमें याद दिलाते हैं कि पूँजी का टर्नओवर काल और कुछ नहीं बल्कि उत्पादन के समय और संचरण के समय का कुल योग होता है। दूसरे शब्दों में, पूँजी का निवेश किये जाने से लेकर पूँजीपति के हाथों में (बेशी मूल्य से संवर्धित होकर) मुद्रा-रूप में उसके लौटने तक की पूरी प्रक्रिया में लगने वाला कुल समय ही टर्नओवर का समय होता है। **टर्नओवर का अर्थ होता है पूँजी का निवेशित होकर वापस बेशी मूल्य से लैस होकर मुद्रा-रूप में पूँजीपति के हाथों में वापस पहुँचना।** जब ऐसा हो जाता है तो कहा जाता है कि पूँजी का टर्नओवर हो गया।

ज़ाहिर है, पूरी प्रक्रिया का लक्ष्य होता है बेशी मूल्य का उत्पादन और उसका वास्तवीकरण, यानी मुद्रा-रूप में उसका पूँजी के साथ नत्थी होकर मुद्रा-रूप में पूँजीपति तक पहुँचना। चाहे हम M…M' को देखें या फिर P…P को देखें, पूँजीवादी उत्पादन का यह लक्ष्य स्पष्ट तौर पर प्रकट हो जाता है। जहाँ तक पूँजी के टर्नओवर का प्रश्न है, हम इसके विश्लेषण के लिए C…C, यानी माल-पूँजी के सर्किट का उपयोग नहीं करते हैं क्योंकि इस सर्किट की शुरुआत ही बेशी-मूल्य से संवर्धित पूँजी से होती है, न कि मूल निवेशित पूँजी-मूल्य से। यह पूँजी के सर्किट का एकमात्र रूप है जहाँ शुरुआत ही मूल्य-संवर्धित पूँजी से होती है। इसलिए पूँजी के टर्नओवर के अध्ययन में, जिसका लक्ष्य ही पूँजी का मूल्य-संवर्धन प्रकट करना है, यानी पूँजी के निवेशित होने, उसके मूल्य-संवर्धित होने और फिर मुद्रा-रूप में पूँजीपति के हाथों में वापस लौटने को प्रकट करना है, हम या तो मुद्रा-पूँजी के सर्किट का इस्तेमाल करते हैं या फिर उत्पादक-पूँजी के सर्किट का, क्योंकि पूँजी के मूल्य-संवर्धन को तभी स्पष्ट तौर पर दिखलाया जा सकता है। माल-पूँजी के सर्किट का प्रयोग कुल सामाजिक पूँजी के पुनरुत्पादन व संचरण के अध्ययन में किया जाता है, जिसके कारणों को हम पहले के अध्यायों में स्पष्ट कर चुके हैं।

जैसा कि हमने ऊपर इंगित किया, टर्नओवर का समय और कुछ नहीं बल्कि उत्पादन के समय और संचरण के समय का कुल योग होता है। इसीलिए टर्नओवर-अवधि का इस्तेमाल पूँजी के सर्किट के पुनर्नवीकृत होने में लगने वाले समय को मापने में भी किया जा सकता है क्योंकि एक टर्नओवर पूरा होने के साथ पूँजी अपने मूल्य-संवर्धन की प्रक्रिया को नये सिरे से शुरू करती है, यानी अपने सर्किट को नये सिरे से शुरू करती है। मार्क्स बताते हैं कि अलग-अलग पूँजियों का टर्नओवर का समय अलग-अलग होता है। इसके कई कारण हो सकते हैं। मसलन, पूँजी उत्पादन की किस शाखा में लगी है, पूँजी के निवेश का स्थान और उसके माल-उत्पाद के वास्तवीकरण के स्थानों की दूरी, आदि। मार्क्स लिखते हैं :

> "अगर हम उन वैयक्तिक घटनाओं को नज़रन्दाज़ कर दें जिनके कारण किसी पूँजी की टर्नओवर-अवधि त्वरित या छोटी हो सकती है, तो अलग-अलग पूँजियों की टर्नओवर-अवधि अलग-अलग निवेश के क्षेत्रों में उनके लगे होने के आधार पर अलग-अलग होती हैं।" (*वही*, पृ. 236)

अलग-अलग उत्पादन की शाखाओं की प्रकृति अलग होती है। मसलन, एक रेल इंजन के निर्माण में किसी भी सूरत में एक कमीज़ के उत्पादन से ज़्यादा वक़्त लगेगा क्योंकि माल व उसके उत्पादन की प्रकृति ही भिन्न है। एक समुद्री जहाज़ और एक मोबाइल फ़ोन के उत्पादन में भी अलग-अलग समय लगेगा। इसलिए पूँजी उत्पादन की किस शाखा में लगी है, इससे उसके टर्नओवर-अवधि पर सबसे बुनियादी प्रभाव पड़ता है।

टर्नओवर-अवधि की माप क्या होती है? यानी, इसे समय की किस इकाई में मापा जाता है? मार्क्स बताते हैं कि टर्नओवर-अवधि को वर्ष की इकाई में मापा जाता है। मार्क्स के अनुसार, वजह यह है कि ऐतिहासिक तौर पर पूँजीवादी उत्पादन के सबसे पहले विकसित केन्द्रों में, जो कि समशीतोष्ण जलवायु के क्षेत्र में थे, पूँजीवादी उत्पादन के सबसे प्रमुख शुरुआती उत्पाद कृषि क्षेत्र में पैदा होने वाले उत्पाद थे। वास्तव में, इस तर्क को उष्णकटिबन्धीय क्षेत्रों के लिए भी सामान्यीकृत किया जा सकता है और मार्क्स यहाँ एक ऐतिहासिक तथ्य मात्र की ओर इशारा कर रहे हैं। पूँजीवादी खेती के ये उत्पाद पूँजीवादी उद्योग के लिए भी आधारभूत महत्व रखते हैं। खेती के ये उत्पाद वास्तव में वार्षिक उत्पाद के रूप में ही उत्पादित होते थे। मार्क्स लिखते हैं :

> "जिस प्रकार कार्यदिवस श्रमशक्ति के प्रकार्य के लिए नैसर्गिक मापन इकाई का काम करते हैं, उसी प्रकार गतिमान पूँजी के टर्नओवरों के लिए वर्ष नैसर्गिक मापन इकाई का काम करते हैं। इस मापन का प्राकृतिक आधार यह है कि समशीतोष्ण क्षेत्र में, जो कि पूँजीवादी उत्पादन की मूल भूमि थी, अधिकांश महत्वपूर्ण खाद्य फसलें वार्षिक उत्पाद हैं।" (*वही*, पृ. 236)

टर्नओवर-अवधि की माप को T से प्रदर्शित किया जाता है, जो कि एक वर्ष या 12 महीनों के बराबर होती है। अगर टर्नओवर-अवधि को t और टर्नओवर की संख्या को n से प्रदर्शित किया जाय, तो टर्नओवर-अवधि के सूत्र को हम इस प्रकार लिख सकते हैं :

$n = T/t$

इसे एक उदाहरण से समझते हैं। मान लें अगर कोई पूँजीपति अपनी पूँजी का निवेश करता है, माल का उत्पादन करता है और उसका माल अन्ततः बाज़ार में बिकता है, और इस पूरी प्रक्रिया में 3 माह लगते हैं, तो हम कहें कि इस पूँजी की टर्नओवर-अवधि 3 माह है। यानी, पूँजी के निवेशित होने, उत्पादन में लगने, माल का उत्पादन होने और माल के बिकने और बेशी-मूल्य से लैस पूँजी के वापस मुद्रा-रूप में पूँजीपति के हाथों में आने में लगने वाला समय। तो उपरोक्त सूत्र के अनुसार, यहाँ t = 3 माह, T हमेशा की तरह 12 माह होगा, और इसके आधार पर n की गणना इस प्रकार की जा सकती है :

$n = T/t = 12/3 = 4$

यानी, इस पूँजीपति की पूँजी का साल में 4 बार टर्नओवर होता है, या उसके पूँजी के टर्नओवर की संख्या 4 है। दूसरे शब्दों में, उसकी पूँजी एक वर्ष में वह चार बार निवेशित होकर बेशी-मूल्य के साथ मुद्रा-रूप में पूँजीपति के हाथों में लौटती है। उपरोक्त उदाहरण से यह स्पष्ट है कि आम तौर पर पूँजीपतियों की पूँजी का वह हिस्सा जो मशीनरी, इमारत व अवरचना में लगा होता है, उसकी टर्नओवर-अवधि समूची पूँजी की टर्नओवर-अवधि से आम तौर पर ज़्यादा होती है। अगर कच्चे माल और श्रमशक्ति पर लगी पूँजी साल में चार बार टर्नओवर पूरा करती है, और साथ में मशीनों, इमारतों आदि में लगी पूँजी का घिसाई-मूल्य चार बार टर्नओवर पूरा करता है, तो बिल्कुल सम्भव है कि पूँजीपति की कुल निवेशित पूँजी का टर्नओवर पूरा हो जाये, जबकि मशीनों, इमारतों, आदि में लगी पूँजी का टर्नओवर अभी पूरा न हुआ हो। यानी, मशीनों, इमारतों, आदि में लगी पूँजी अभी पूर्ण रूप से ख़र्च होकर वापस पुनर्नवीकृत न हुई हो, लेकिन कच्चे माल व श्रमशक्ति में लगी पूँजी का टर्नओवर कई दफ़ा होने की वजह से पूँजीपति की कुल निवेशित पूँजी अपना टर्नओवर पूरा कर ले। मिसाल के तौर पर, एक पूँजीपति ने कुल रु. 1 करोड़ का निवेश किया। इसमें से रु. 50 लाख उसने मशीनरी व इमारत, आदि पर लगाये, जबकि बाक़ी रु. 50 लाख उसने कच्चे माल व श्रमशक्ति पर लगाये। अगर एक वर्ष में वह पूँजीपति चार बार कच्चे माल व श्रमशक्ति पर अपनी पूँजी को निवेशित करता है, बेशी-मूल्य से लैस माल का उत्पादन करता है और बेशी-मूल्य समेत अपनी पूँजी को मुद्रा-रूप में वास्तवीकृत करता है, तो हम कहेंगे उसकी इस पूँजी का चार बार टर्नओवर होता है। ऐसे में, पूँजीपति 2 करोड़ रुपये का संचरण पूर्ण लेता है (बेशी-मूल्य के संचरण को हम फ़िलहाल नज़रन्दाज़ कर सकते हैं क्योंकि मूल पूँजी के टर्नओवर होने मात्र से पूँजीपति पुनरुत्पादन को जारी रखने में सक्षम हो जाता है और यहाँ सारा प्रश्न ही पुनरुत्पादन का है)। लेकिन उसकी मशीनरी व इमारत की घिसाई व अवमूल्यन अभी पूरा नहीं हुआ है। अगर उनकी घिसाई दर 10 प्रतिशत प्रति वर्ष तो वे 10 वर्ष तक अपनी सेवा उत्पादन में देते रहेंगे, उनका पूरा अवमूल्यन व ख़र्च 10 वर्ष में होगा और उनके पुनर्नवीकरण की आवश्यकता भी 10 वर्ष बाद होगी। दूसरे शब्दों में, इस उदाहरण में अचल पूँजी का टर्नओवर का समय 10 वर्ष है, जबकि पूँजीपति की पूरी पूँजी साल में कम-से-कम दो बार टर्नओवर पूरा कर लेती है, क्योंकि, चल पूँजी, यानी श्रमशक्ति और कच्चे माल पर लगे रु. 50 लाख का साल में चार बार टर्नओवर हो जाता है।

इसी के साथ हम चल और अचल पूँजी के अन्तर पर आते हैं। हम ऊपर पूँजी के जिन हिस्सों की बात कर रहे हैं, उन्हें ही *चल पूँजी* व *अचल पूँजी* कहा जाता है। मार्क्स इस श्रेणीकरण पर विस्तार से बात रखते हैं क्योंकि यह पूँजी के पुनरुत्पादन की प्रक्रिया को समझने के लिए बेहद अहम है। *पूँजी* के पहले खण्ड में परिवर्तनशील व स्थिर पूँजी का अन्तर हमें मूल्य-संवर्धन के आधार पूँजी की दो श्रेणियों के बारे में बताता है। लेकिन चल और अचल पूँजी के श्रेणीकरण का रिश्ता मूल्य-संवर्धन से नहीं है, बल्कि इस बात से है कि पूँजी के विभिन्न तत्व किस प्रकार से संचरित होते हैं, यानी उनका मूल्य किस तरह से उत्पाद में स्थानान्तरित होता है। इसी के आधार पर पूँजी के विभिन्न तत्वों का पुनरुत्पादन की प्रक्रिया में पुनर्नवीकरण होता है। इसलिए पुनरुत्पादन की प्रक्रिया के विश्लेषण के लिए चल व अचल पूँजी के अन्तर को समझना अनिवार्य है।

अचल व चल पूँजी

हमने पहले ही पढ़ा कि मूल्य-संवर्धन के आधार पर पूँजी को दो प्रकारों में बाँटा जा सकता है: *परिवर्तनशील पूँजी*, जो श्रमशक्ति को ख़रीदने में लगती है और जो मूल्य-संवर्धन यानी बेशी-मूल्य के उत्पादन में लिए ज़िम्मेदार होती है (क्योंकि जीवित श्रम ही नया मूल्य पैदा करता है) और *स्थिर पूँजी*, जो उत्पादन के साधनों, यानी श्रम के उपकरण (मशीनरी, औज़ार, आदि) और कच्चे माल पर लगती है और जो कोई नया मूल्य नहीं पैदा करती बल्कि श्रम के अभिकरण के ज़रिये सिर्फ़ अपना मूल्य उत्पाद में स्थानान्तरित करती हैं, चाहे एक उत्पादन-चक्र में या कई उत्पादन-चक्रों में। अब हम एक नये श्रेणीकरण पर आते हैं, जिसका रिश्ता मूल्य के पैदा होने से नहीं है, बल्कि केवल मूल्य के संचरण से है। यानी, इस श्रेणीकरण का इस्तेमाल मूलत: और मुख्यत: संचरण की प्रक्रिया के विश्लेषण में होता है। यह श्रेणीकरण है चल व अचल पूँजी का अन्तर।

सबसे पहले समझते हैं कि अचल पूँजी

(पेज 20 पर जारी)

मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त

(पेज 19 से आगे)

क्या है। अचल पूँजी निवेशित होने वाली पूँजी का वह हिस्सा है जो उत्पादन के उन तत्वों पर ख़र्च होता है जो उत्पादन के एक चक्र में पूरी तरह से ख़र्च नहीं होते और इसलिए उत्पादन के एक चक्र में ही अपना पूरा मूल्य स्थानान्तरित नहीं करते। यानी, यह निवेशित पूँजी का वह हिस्सा होता है जो मशीनरी, इमारत आदि पर ख़र्च होता है। यानी स्थिर पूँजी के तत्वों में से ही कुछ तत्व (मशीनरी, इमारत, आदि) अचल पूँजी के तत्व होते हैं, जबकि अन्य तत्व (यानी कच्चा माल, सहायक सामग्री, आदि) चल पूँजी के तत्व होते हैं। *अचल पूँजी के तत्व अपना मूल्य टुकड़ों में स्थानान्तरित करते हैं और, अगर खेती में इस्तेमाल होने वाले कुछ निश्चित खाद सामग्रियों को छोड़ दें, तो ये भौतिक रूप से उत्पादित होने वाले उत्पाद में स्थानान्तरित नहीं होते।* भौतिक रूप में, वे कई टर्नओवरों तक उत्पादन में अपनी भूमिका निभाते रहते हैं, जबकि मूल्य के रूप में, वे अपना मूल्य अपनी घिसाई-दर के आधार पर टुकड़ों-टुकड़ों में कई टर्नओवर तक उत्पाद में स्थानान्तरित करते रहते हैं।

चूँकि भौतिक तौर पर वे उत्पादन की प्रक्रिया में 'फिक्स्ड' होते हैं, यानी अचल रहते हैं, और उत्पादित होने वाले उत्पाद में स्थानान्तरित नहीं होते, इसलिए उन्हें अचल पूँजी (fixed capital) की संज्ञा दी गयी। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि उनका मूल्य भी स्थानान्तरित नहीं होता और वह भी पूरा का पूरा 'फिक्स्ड' रहता है! पूँजी के अन्य तत्वों से अन्तर सिर्फ़ इतना होता है कि उनका मूल्य एक बार में उत्पाद में स्थानान्तरित नहीं होता, बल्कि अंशों में स्थानान्तरित होता है। मिसाल के तौर पर, मशीन तब तक भौतिक तौर पर उत्पादन की प्रक्रिया में मौजूद रहती है जब तक उसकी घिसाई पूरी न हो जाये और वह उत्पादन में अपनी भूमिका निभाने में अक्षम न हो जाये। इस पूरे दौर में मशीन अपनी घिसाई की दर के अनुसार अपने मूल्य को अंशों में उत्पाद में स्थानान्तरित करती है, हालाँकि भौतिक तौर पर उसका कोई भी हिस्सा उत्पाद में स्थानान्तरित नहीं होता है, जैसा कि कच्चे माल के साथ होता है। *घिसाई की दर किसी भी मशीन की कुल उम्र के आधार पर निर्धारित होती है।* मसलन, अगर कोई विशेष मशीन किसी उत्पादन की प्रक्रिया में औसतन 5 वर्षों तक काम करने योग्य रहती है, तो उसका पूरा मूल्य 5 वर्षों में उत्पाद में रूपान्तरित होता है और जब यह प्रक्रिया पूरी हो जाती है, तो भौतिक तौर पर जो बचता है, वह उस 'मशीन का शव' (corpse of machine) होता है। यानी, हर वर्ष उस मशीन के मूल्य का 1/5 हिस्सा उत्पाद में स्थानान्तरित होता है।

मार्क्स बताते हैं कि अचल पूँजी दो मायनों में अचल या 'फिक्स्ड' होती है। एक तो उपयोग-मूल्य के तौर, यानी भौतिक तौर पर, वह उत्पादन की प्रक्रिया में अचल या 'फिक्स्ड' रहती है और उसके भौतिक शरीर का एक अणु भी उत्पाद में स्थानान्तरित नहीं होता। दूसरा, मूल्य के तौर पर भी उसका एक हिस्सा उत्पादन की प्रक्रिया में 'फिक्स्ड' रहता है, क्योंकि उसका पूरा मूल्य एक बार में स्थानान्तरित नहीं होता। जैसा कि हमने ऊपर बताया, अचल पूँजी का एक तत्व, यानी खेती में प्रयोग होने वाली खाद सामग्री इसका एक अपवाद है क्योंकि यह भौतिक तौर पर अंशत: उत्पाद में स्थानान्तरित होती है, लेकिन इसका मूल्य एक उत्पादन-चक्र में स्थानान्तरित नहीं होता, बल्कि कई उत्पादन-चक्रों तक अंश-अंश में स्थानान्तरित होता रहता है। *इसलिए यह अचल पूँजी का हिस्सा मानी जाती है क्योंकि यह श्रेणीकरण ही इस आधार पर किया गया है कि उत्पादन के विभिन्न तत्व अपना मूल्य किस प्रक्रिया में उत्पाद में स्थानान्तरित करते हैं: एक बार में या अंशों में।* इसलिए यहाँ उपयोग-मूल्य या उत्पादन के तत्व का भौतिक रूप गौण है जबकि मूल्य के स्थानान्तरित होने की प्रक्रिया प्रधान है।

दूसरे शब्दों में, उत्पादन का कोई तत्व अचल पूँजी का अंग है चल पूँजी का अंग, इसे निर्धारित करने का आधारभूत पैमाना यह है कि मूल्य का स्थानान्तरण उत्पाद में किस रूप में होता है: एक बार में या फिर अंश-अंश में।

मार्क्स बताते हैं कि किसी भी उत्पादन के तत्व की भौतिक विशिष्टता या प्रकृति के आधार यह तय नहीं किया जा सकता है कि वह अचल पूँजी का तत्व है या चल पूँजी का। वही चीज़ उत्पादन की प्रक्रिया में अपनी भूमिका के आधार अचल पूँजी का तत्व हो सकती है और उत्पादन की प्रक्रिया में किसी अन्य भूमिका के आधार पर चल पूँजी का तत्व हो सकती है। मसलन, कुछ बुर्जुआ अर्थशास्त्रियों का यह *भौतिकतावादी (physicalist)* भ्रम था कि उत्पादन का वह तत्व जो भौतिक तौर पर गतिमान होता है, वह चल पूँजी का अंग होता है और वह जो अपना स्थान नहीं बदलता वह अचल पूँजी का अंग होता है। लेकिन मार्क्स एक समुद्री जहाज़ का उदाहरण देते हुए बताते हैं कि वह भौतिक रूप से गतिमान होता है, लेकिन फिर भी वह अचल पूँजी का तत्व होता है न कि चल पूँजी का। उसी प्रकार, कुछ बुर्जुआ अर्थशास्त्री किसी वस्तु की प्राकृतिक विशिष्टताओं के आधार पर उसे चल या अचल पूँजी का तत्व क़रार देते थे। यह भी एक प्रकार भौतिकतावादी भ्रम था। मार्क्स इसके खण्डन करते हुए बताते हैं कि यदि किसी ढोर-डंगर का प्रयोग खेती में या बोझ ढोने वाले पशु के तौर पर किया जाता है, तो उक्त उत्पादन-प्रक्रिया में वह अचल पूँजी का तत्व होता है, लेकिन अगर उसी पशु का इस्तेमाल मांस-उद्योग में याने खाद्य-सामग्री के तौर पर किया जाता है, तो वह चल पूँजी का तत्व होता है। पहले मामले में उस पशु का मूल्य उत्पाद में अंशत: स्थानान्तरित होता है, जबकि दूसरे मामले में उसका मूल्य एक बार में ही उत्पाद में स्थानान्तरित हो जाता है। ***कह सकते हैं कि भाजपाइयों के लिए उत्तर भारत में गाय अचल पूँजी का हिस्सा है जबकि केरल, उत्तर-पूर्व, गोवा आदि में वह चल पूँजी का हिस्सा भी हो सकती है!***

बहरहाल, मुद्दे की बात यह है कि यह चीज़ों का प्राकृतिक रूप या प्रकार नहीं होता या उनका भौतिक तौर पर स्थान बदलना या स्थिर रहना नहीं होता, जो यह तय करता है कि वह चल पूँजी का अंग है या अचल पूँजी का, बल्कि यह उत्पादन की प्रक्रिया में उस चीज़ की भूमिका होती है जिसके आधार पर यह तय होता है कि वह अपना मूल्य एक बार में उत्पाद में स्थानान्तरित कर रही है या फिर कई बार में, अंशों में। मार्क्स लिखते हैं :

> "मिसाल के तौर पर, खेती में मिट्टी की गुणवत्ता को बेहतर बनाने के लिए डाली जाने वाली सामग्री वनस्पति-उत्पाद *(यानी फसल या पौधे में – अनु.)* में निर्माणात्मक तत्व के रूप में प्रवेश करते हैं। लेकिन उनका प्रभाव एक अच्छे-ख़ासे लम्बे दौर में, मसलन, चार से पाँच वर्ष में, फैला होता है। इसलिए उनका एक हिस्सा उत्पाद में भौतिक तौर पर प्रवेश करता है, और इसलिए तत्काल अपना मूल्य उसमें स्थानान्तरित करता है, जबकि एक दूसरा हिस्सा पुराने उपयोग-रूप में ही क़ैद रहता है, और इसलिए उसका मूल्य भी उस उपयोग-रूप में ही मौजूद रहता है। यह एक उत्पादन के साधन के तौर पर अपना काम करना जारी रखता है और इसलिए उसे अचल पूँजी का रूप प्राप्त होता है। *एक भारवाहक पशु के रूप में एक बैल अचल पूँजी है। लेकिन अगर उसे खा लिया जाता है, तो वह श्रम के उपकरण के रूप में, या अचल पूँजी के रूप में काम नहीं करता।*
>
> *"वह गुण जो उत्पादन के साधनों पर ख़र्च पूँजी-मूल्य के किसी हिस्से को अचल पूँजी का चरित्र देता है, वह केवल उस तरीके में निहित होता है जिससे मूल्य का संचरण होता है।* संचरण का यह विशिष्ट तरीक़ा उस विशिष्ट रूप से पैदा होता है जिसमें वह श्रम का उपकरण अपना मूल्य उत्पाद में स्थानान्तरित करता है, या उत्पादन की प्रक्रिया में मूल्य निर्मित करने में काम करता है। और स्वयं यह रूप उस विशेष तरीके से पैदा होता है जिसमें कोई श्रम का उपकरण श्रम प्रक्रिया में काम करता है।" (*वही*, पृ. 239-40, *ज़ोर हमारा*)

अब यदि अचल पूँजी के तत्वों का मूल्य एक बार में उत्पाद में पूर्ण रूप से रूपान्तरित नहीं होता तो यह स्वत: स्पष्ट है कि अचल पूँजी का टर्नओवर का समय कुल पूँजी के टर्नओवर के समय से आम तौर पर ज़्यादा होता है। दूसरे शब्दों में, अचल पूँजी का एक टर्नओवर चल पूँजी के कई टर्नओवर के बराबर होता है। अचल पूँजी के टर्नओवर का समय एक पूँजीपति के लिए बेहद महत्वपूर्ण होता है क्योंकि जब अचल पूँजी का टर्नओवर पूरा होता है, अचल पूँजी के तत्व ख़र्च हो जाते हैं, तो उनको फिर से ख़रीदने के लिए पूँजीपति को बड़ा निवेश करना पड़ता है। मसलन, किसी भारी मशीनरी या इमारत के उत्पादन की प्रक्रिया में पूर्णत: ख़र्च हो जाने के बाद पूँजीपति को उनके पुनर्नवीकरण के लिए भारी-भरकम निवेश करना पड़ता है। अचल पूँजी के मूल्य के अंशत: उत्पाद में रूपान्तरित हुए हिस्से हर बार माल-उत्पाद की बिक्री के साथ पूँजीपति के पास वापस भी आते रहते हैं, जो उसके लिए एक निधि का निर्माण करते हैं, जिसे एमॉर्टाइजेशन फण्ड या सिंकिंग फण्ड कहा जाता है। इसके ज़रिये, पूँजीपति अचल पूँजी के ख़र्च हो चुके तत्वों को फिर से ख़रीदता है या उनका पुनर्नवीकरण करता है। यहाँ बताने की आवश्यकता नहीं है कि अचल पूँजी के सारे तत्वों का टर्नओवर का समय एक बराबर नहीं होता, बल्कि वह स्वयं भी अलग-अलग होता है। मसलन, एक हल्की मशीनरी का टर्नओवर का समय, एक भारी मशीनरी का टर्नओवर का समय और एक इमारत के टर्नओवर का समय एक बराबर नहीं होते। इसलिए कुल अचल पूँजी के टर्नओवर के समय को एक औसत के तौर पर आकलित करना होता है।

बहरहाल, आज के दौर में, जब पूँजीवादी ऋण व्यवस्था बेहद विकसित हो चुकी है, पूँजीपति अचल पूँजी के तत्वों के पुनर्नवीकरण के लिए ऋण का इस्तेमाल भी कर सकता है। लेकिन इस ऋण की ब्याज समेत अदायगी भी वह माल-उत्पाद की बिक्री से आने वाली पूँजी से ही करता है। इसलिए इस मामले के सारतत्व पर इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता कि पूँजीपति हर बार माल-उत्पाद की बिक्री से निर्मित एमॉर्टाइज़ेशन फ़ण्ड को बचाता है और उसे ख़र्च कर अचल पूँजी के तत्वों को ख़रीदता है, या फिर वह पूँजीवादी क्रेडिट तन्त्र का इस्तेमाल करता है।

मार्क्स बताते हैं कि अचल पूँजी के सभी तत्व न सिर्फ़ एक बराबर टर्नओवर-अवधि नहीं रखते बल्कि वे एक ही प्रकार से पुनर्नवीकृत भी नहीं होते। अचल पूँजी के कुछ तत्व ऐसे होते हैं, जो उत्पादन में अपनी सेवाएँ देते हुए ख़र्च हो जाते हैं और पूँजीपति उन्हें फिर से नये सिरे से ख़रीदता है। लेकिन अचल पूँजी के कुछ तत्व ऐसे होते हैं, जिनका पुनर्नवीकरण टुकड़ों-टुकड़ों में होता रहता है, मसलन, कुछ बेहद भारी मशीनें और इमारतें, गोदाम आदि। ये भौतिक तौर पर पूरी तरह ख़र्च होकर कबाड़ में नहीं जाते। इनका अंशों-अंशों में पुनर्नवीकरण उत्पादन की जारी प्रक्रियाओं के दौरान ही नियमित अन्तरालों पर होता रहता है। नतीजतन, वे बेहद लम्बे समय तक भौतिक तौर पर उत्पादन की प्रक्रिया में बने रहते हैं। लेकिन अंश-अंश में जारी पुनर्नवीकरण के कारण, एक समयान्तराल के बाद, वे भौतिक तौर पर कमोबेश पूरा ही बदल जाते हैं। लेकिन ऐसे तत्वों में मामले में भी उनके मूल्य के पूर्ण रूप से स्थानान्तरित होने के औसत समय का आकलन इन नियमित अन्तराल पर होने वाले पुनर्नवीकरण में होने वाले ख़र्च के आधार पर किया जाता है। ऐसे तत्वों के सतत् जारी पुनर्नवीकरण के ख़र्च को पूँजीपति अचल पूँजी की भरपाई फ़ण्ड के तौर पर ही दर्ज करता है।

अचल पूँजी के सारे ही तत्वों को नियमित मरम्मत और देखरेख की आवश्यकता होती है। मेण्टेनेंस का यह काम दो प्रकार से सम्पन्न होता है। पहला तो उत्पादन की प्रक्रिया के दौरान स्वयं मज़दूर फ़्री में करते रहते हैं। यह मेण्टेनेंस की सेवा मज़दूर पूँजीपति को मुफ़्त में देते हैं और श्रम का नैसर्गिक उपहार होता है जो पूँजीपति को फ्री में मिल जाता है। उत्पादन की प्रक्रिया के दौरान ही मशीनों की छोटी-मोटी मरम्मत, सफ़ाई, रिपेयर व मेण्टेनेंस के तमाम काम उन मशीनों पर काम करने मज़दूर करते रहते हैं। इसके लिए उन्हें अलग से कोई मेहनताना नहीं मिलता और पूँजीपति को यह सेवा बिना किसी ख़र्च के हासिल हो जाती है। यह पूँजीपतियों के लिए श्रम का प्राकृतिक तोहफ़ा होता है। इसके अलावा, पूँजीपतियों को नियमित अन्तराल पर मेण्टेनेंस का विशिष्ट काम करने वाले मज़दूरों (टेक्नीशियन, इलेक्ट्रीशियन, प्लम्बर, इंजीनियर, आदि) को भी काम पर रखकर यह काम करवाना पड़ता है। इन मज़दूरों से यह कैजुअल काम पूँजीपति प्रत्यक्ष तौर पर करवा सकता है, या फिर मेण्टेनेंस का ही काम करने वाले किसी पूँजीपति की कम्पनी को दे सकता है। लेकिन यह नियमित होने वाला ख़र्च अचल पूँजी की भरपाई के खाते में नहीं जाता है, क्योंकि यह पूँजीपति के लिए एक 'रनिंग एक्सपेण्डीचर', यानी, नियमित तौर पर जारी सतत् जारी ख़र्च होता है, जिसका मूल्य औसतीकृत होकर एक बार में ही उत्पाद के मूल्य में स्थानान्तरित हो जाता है। मार्क्स लिखते हैं :

> "अचल पूँजी मेण्टेनेंस की विशिष्ट लागतों को जन्म देती है। इस मेण्टेनेंस का एक हिस्सा तो स्वयं श्रम प्रक्रिया द्वारा ही पूरा कर दिया जाता है; अचल पूँजी अगर श्रम प्रक्रिया में काम नहीं करती तो यह बरबाद हो जाती है... *यह मेण्टेनेंस जो श्रम प्रक्रिया में इस्तेमाल किये जाने से ही परिणत हो जाता है, वह जीवित श्रम द्वारा मुफ़्त में दिया जाने वाला प्राकृतिक उपहार होता है।* वास्तव में, श्रम की संरक्षणकारी शक्ति दोहरे प्रकार की होती है। एक ओर यह उत्पाद में स्थानान्तरित कर श्रम की सामग्रियों के मूल्य का संरक्षण करता है, वहीं दूसरी ओर ये श्रम के माध्यम का संरक्षण इस मूल्य को उत्पाद में स्थानान्तरित किये बिना, यानी उत्पादन-प्रक्रिया में अपनी कार्रवाई के ज़रिये उनके उपयोग-मूल्य को बचाकर भी करता है।
>
> *"लेकिन अगर अचल पूँजी के तत्वों को अच्छी स्थिति में रखना है तो उसे श्रम*

(पेज 21 पर जारी)

मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त

(पेज 20 से आगे)

के सकारात्मक अतिरिक्त ख़र्च की भी आवश्यकता पड़ती है। समय-समय पर मशीनरी की सफ़ाई होनी चाहिए। इसमें अतिरिक्त श्रम ख़र्च होता है, जिसके बिना वह काम करने योग्य नहीं रह जाती है. यह केवल उन तत्वों के क्षतिकारक प्रभाव से रक्षा मात्र है जो कि उत्पादन की प्रक्रिया से अभिन्न रूप से जुड़े होते हैं, और इसलिए एकदम शाब्दिक अर्थों में अचल पूँजी के तत्वों काम करने वाली हालत में रखते हैं। अचल पूँजी के सामान्य जीवनकाल का आकलन इस मान्यता के आधार पर ही किया जाता है कि जिन स्थितियों के तहत वे इस पूरी अवधि में सामान्य तौर पर काम कर सकती है, वे पूरी की जा रही हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे कि यह मान लिया जाता है कि अगर एक मनुष्य का औसत जीवन तीस वर्ष है, तो वह नियमित तौर पर नहाता ही होगा। यहाँ जो बात समझने वाली है वह यह नहीं है कि मशीन में लगे श्रम को प्रतिस्थापित किया जा रहा है, बल्कि अतिरिक्त श्रम ख़र्च किया जा रहा है जो इसके निरन्तर इस्तेमाल के लिए अनिवार्य है। यह मशीन द्वारा हुए श्रम का प्रश्न नहीं है, बल्कि मशीन पर किये जा रहे श्रम का प्रश्न है; यहाँ वह उत्पादन का अभिकर्ता नहीं है, बल्कि कच्चा माल है। इस श्रम पर ख़र्च होने वाली पूँजी तरल (चल - *अनु.*) पूँजी का हिस्सा होती है, हालाँकि यह उस वास्तविक श्रम प्रक्रिया में प्रवेश नहीं करता है, जिससे उत्पाद पैदा होता है। यह श्रम उत्पाद की प्रक्रिया में लगातार किया जाना चाहिए, और इसलिए इसका मूल्य भी उत्पाद के मूल्य द्वारा लगातार प्रतिस्थापित होना चाहिए। *इस पर ख़र्च पूँजी तरल पूँजी के उस हिस्से में शामिल होती है जिससे सामान्य ओवरहेड लागत पूरी होती है, और यह उत्पाद के मूल्य पर एक औसत वार्षिक गणना के अनुसार वितरित कर दी जाती है।* जैसा कि हमने देखा है, वास्तविक उद्योग में इस सफ़ाई के काम को मज़दूर अन्तरालों के दौरान मुफ़्त में करते हैं, और इसी वजह से इसे अक्सर उत्पादन प्रक्रिया के दौरान किया जाता है, जो कि दुर्घटनाओं का प्रमुख कारण है। यह श्रम माल की कीमत में शामिल नहीं होता। इस रूप में, ग्राहक को यह मुफ़्त में प्राप्त होता है। इसके अलावा, पूँजीपति को अपनी मशीन के मेण्टेनेंस पर कोई ख़र्च नहीं करना पड़ता। मज़दूर स्वयं अपने व्यक्ति-रूप में इसका भुगतान करता है और यह पूँजी के आत्म-संरक्षण के रहस्यों में से एक है, जो वास्तव में मशीनरी के ऊपर मज़दूर के कानूनी दावे को निर्मित करता है, और बुर्जुआ दृष्टिकोण से भी कहें तो मज़दूर को मशीनरी का सह-स्वामी बना देता है। लेकिन उत्पादन की कई शाखाओं में जहाँ मशीनरी को सफ़ाई के लिए उत्पादन की प्रक्रिया से हटाना पड़ता है, और इसलिए सफ़ाई निर्विघ्न रूप में नहीं हो सकती, मसलन, जैसा कि लोकोमोटिव इंजनों के साथ होता है, ऐसी शाखाओं में मेण्टेनेंस कार्य एक सतत् जारी लागत (रनिंग कॉस्ट) के रूप में जोड़ा जाता है, यानी, तरल पूँजी के एक तत्व के रूप में।" (*वही*, पृ. 252-53, *ज़ोर हमारा*)

अचल पूँजी पर चर्चा करते हुए अन्त में मार्क्स अचल पूँजी की घिसाई और अवमूल्यन के तीन प्रकारों की बात करते हैं। अचल पूँजी के तत्वों का अवमूल्यन तीन प्रकार से होता है: *पहला, श्रम-प्रक्रिया के दौरान व उसके ज़रिये*; केवल इस रूप में होने वाले अवमूल्यन या घिसाई के ज़रिये ही अचल पूँजी के तत्वों का मूल्य उत्पाद में रूपान्तरित होता है और इसीलिए पूँजीपति चाहता है कि उसकी मशीन व अचल पूँजी के अन्य तत्व लगातार उत्पादन की प्रक्रिया में श्रम-प्रक्रिया द्वारा ख़र्च हों ताकि उनका मूल्य उत्पाद के मूल्य में स्थानान्तरित हो और वास्तवीकृत होकर मुद्रा-रूप में उसके पास वापस आ सके। *दूसरा, प्राकृतिक शक्तियों की कार्रवाई द्वारा होने वाली घिसाई व अवमूल्यन।* मशीनें जब नहीं चल रही होतीं, तो भी नमी, गर्मी, ज़ंग लगने, आदि के कारण उनका अवमूल्यन होता रहता है; इस रूप में मशीनों की होने वाली घिसाई व अवमूल्यन से उत्पाद में कोई मूल्य स्थानान्तरित नहीं होता। *तीसरा रूप वह रूप है जिसे मार्क्स 'नैतिक अवमूल्यन' कहते हैं क्योंकि यह भौतिक अवमूल्यन से बिल्कुल भिन्न है।* एक ओर पूँजीवादी उत्पादन के विकास के साथ मशीनों की उम्र बढ़ती भी है क्योंकि वे भौतिक तौर पर अधिक टिकाऊ हो जाती हैं, लेकिन एक दूसरा कारक उनका नैतिक अवमूल्यन, यानी मूल्य-ह्रास भी करता रहता है: श्रम की उत्पादकता में सतत् विकास। यह सम्भव है कि मशीन उपयोग-मूल्य के रूप में बिल्कुल अच्छी काम करने योग्य स्थिति में हो, लेकिन अब वह उतना मूल्य उत्पाद में स्थानान्तरित नहीं करेगी, जितने मूल्य पर पूँजीपति ने उसे ख़रीदा था। क्यों? क्योंकि श्रम की उत्पादकता के आम तौर पर विकास के साथ मशीनों का सामाजिक मूल्य भी गिरता है, यानी वे सस्ती होती जाती हैं और साथ ही तकनोलॉजी के मामले में उन्नत होती जाती हैं। नतीजतन, पूँजीपति ने जिस क़ीमत पर किसी विशिष्ट मशीन को ख़रीदा था, वह समय बीतने के साथ सस्ती हो सकती है। हर नयी निवेशित होने वाली पूँजी इस नये कम हो चुके मूल्य पर ही मशीन को ख़रीदेगी और उसके उत्पाद में मशीन का यह नया सामाजिक मूल्य ही अंश-अंश में स्थानान्तरित होगा। इसलिए कोई पुरानी पूँजी का स्वामी यह नहीं कह सकता कि उसने मशीन अतीत में इससे ज़्यादा क़ीमत पर ख़रीदी थी, इसलिए वह अपने उत्पाद के मूल्य में मशीन के पुराने मूल्य को ही जोड़ेगा! बाज़ार में पूँजियों की आपसी प्रतिस्पर्द्धा सुनिश्चित करती है कि हर मशीन का वर्तमान सामाजिक मूल्य ही उत्पाद में स्थानान्तरित होता है। इसलिए भी पूँजीपति चाहते हैं कि उनकी मशीनें निरन्तर श्रम-प्रक्रिया में चलकर ख़र्च हों, न कि उनका नैतिक (भौतिक के विपरीत) अवमूल्यन हो, जिसका अर्थ है श्रम की उत्पादकता में वृद्धि के कारण किसी पुरानी मशीन का मूल्य-ह्रास। मार्क्स लिखते हैं :

"जिस हद तक काम में लगायी गयी अचल पूँजी का मूल्य और टिकाऊपन पूँजीवादी उत्पादन पद्धति के विकास के साथ विकसित होता है, उसी हद तक हर विशिष्ट निवेश में उद्योग व औद्योगिक पूँजी का जीवन विकसित होता है, जो बढ़ते हुए कई वर्षों तक चला जाता है, मान लें, औसतन दस वर्षों तक। अगर अचल पूँजी का विकास एक ओर उसके जीवन-काल को बढ़ाता है, तो वहीं दूसरी आर वह उत्पादन के साधनों के निरन्तर क्रान्तिकारी रूपान्तरण के कारण छोटा भी होता जाता है, जो स्वयं पूँजीवादी उत्पादन पद्धति के विकास के साथ त्वरित होता जाता है। यह भी उत्पादन के साधनों में बदलाव की ओर ले जाता है; उन्हें उनके नैतिक अवमूल्यन के कारण उनके भौतिक तौर पर ख़र्च हो जाने के काफ़ी पहले ही बार-बार बदलना पड़ता है।" (*वही*, पृ. 264)

यानी, केवल श्रम-प्रक्रिया द्वारा अचल पूँजी के तत्वों का अवमूल्यन ही पूँजीपति के हित में है और प्राकृतिक शक्तियों द्वारा अवमूल्यन और नैतिक अवमूल्यन को पूँजीपति हमेशा न्यूनातिन्यून बनाना चाहता है। यही वजह है कि अट्ठारहवीं सदी में आधुनिक मशीनों के आने साथ श्रम की सघनता घटने के बजाय बढ़ी क्योंकि पूँजीपतियों ने कार्यदिवस के घण्टे बढ़ा दिये, रात्रि-कार्य करवाना शुरू करवा दिया, मशीनों की गति बढ़ायी, ताकि श्रम-प्रक्रिया के ही ज़रिये मशीनों के अवमूल्यन को अधिक से अधिक तेज़ कर उनका मूल्य उत्पाद में स्थानान्तरित किया जा सके। इस प्रकार, पूँजीवादी उत्पादन-सम्बन्धों के मातहत वह चीज़ जिसे मनुष्य के प्रयासों को आसान बनाना चाहिए था, श्रम की सघनता को कम करना चाहिए था, काम के घण्टे घटाने चाहिए थे, ठीक उसी चीज़ ने इनका ठीक उल्टा किया।

इसके बाद मार्क्स चल पूँजी पर आते हैं और उस पर विस्तार से चर्चा करते हैं।

(अध्याय 6 अगले अंक में जारी)

भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु के शहादत दिवस (23 मार्च) पर

...हमारा यह भी विश्वास है कि साम्राज्यवाद एक बड़ी डाकेज़नी की साज़िश के अलावा कुछ नहीं। साम्राज्यवाद मनुष्य के हाथों मनुष्य के और राष्ट्र के हाथों राष्ट्र के शोषण का चरम रूप है। साम्राज्यवादी अपने हितों, और लूटने की योजनाओं को पूरा करने के लिए न सिर्फ़ न्यायालयों और क़ानून का कत्ल करते हैं, बल्कि भंयकर हत्याकाण्ड भी आयोजित करते हैं। अपने शोषण को पूरा करने के लिए जंग-जैसे ख़ौफ़नाक अपराध भी करते हैं। जहाँ कहीं लोग उनकी नादिरशाही शोषणकारी माँगों को स्वीकार न करें या चुपचाप उनकी ध्वस्त कर देनेवाली और घृणा-योग्य साज़िशों को मानने से इनकार कर दें तो वे निरपराधियों का ख़ून बहाने से संकोच नहीं करते। शान्ति-व्यवस्था की आड़ में वे शान्ति-व्यवस्था भंग करते हैं। भगदड़ मचाते हुए लोगों की हत्या, अर्थात हर सम्भव दमन करते हैं।...

हम मानते हैं कि स्वतन्त्रता प्रत्येक मनुष्य का अमिट अधिकार है। हर मनुष्य को अपने श्रम का फल पाने-जैसा सभी प्रकार का अधिकार है और प्रत्येक राष्ट्र अपने मूलभूत प्राकृतिक संसाधनों का पूर्ण स्वामी है। अगर कोई सरकार जनता को उसके इन मूलभूत अधिकारों से वंचित रखती है तो जनता का केवल यह अधिकार ही नहीं बल्कि आवश्यक कर्तव्य भी बन जाता है कि ऐसी सरकार को समाप्त कर दे।...

हम वर्तमान ढाँचे के सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्रों में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने के पक्ष में हैं। हम वर्तमान समाज को पूरे तौर पर एक नये सुगठित समाज में बदलना चाहते हैं। इसी तरह मनुष्य के हाथों मनुष्य का शोषण असम्भव बनाकर सभी के लिए सब क्षेत्रों में पूरी स्वतन्त्रता विश्वसनीय बनायी जा सकेगी। जब तक सारा सामाजिक ढाँचा बदला नहीं जाता और उसके स्थान पर समाजवादी समाज स्थापित नहीं होता, हम महसूस करते हैं कि सारी दुनिया एक तबाह कर देनेवाले प्रलय-संकट में है।...

– कमिश्नर, विशेष ट्रिब्यूनल, लाहौर साजिश केस, लाहौर के नाम भगतसिंह सहित छह क्रान्तिकारियों द्वारा लिखे पत्र के अंश

हम यह कहना चाहते हैं कि युद्ध छिड़ा हुआ है और यह युद्ध तब तक चलता रहेगा, जब तक कि शक्तिशाली व्यक्ति भारतीय जनता और श्रमिकों की आय के साधनों पर अपना एकाधिकार जमाये रखेंगे। चाहे ऐसे व्यक्ति अंग्रेज़ पूँजीपति, अंग्रेज़ शासक या सर्वथा भारतीय ही हों। उन्होंने आपस में मिलकर एक लूट जारी कर रखी है। यदि शुद्ध भारतीय पूँजीपतियों द्वारा ही निर्धनों का ख़ून चूसा जा रहा हो तब भी इस स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ता।...

यह युद्ध चलता रहेगा। इसमें छोटी-छोटी बातों पर ध्यान नहीं दिया जायेगा। बहुत सम्भव है कि यह युद्ध भयानक स्वरूप धरण कर ले। यह उस समय तक समाप्त नहीं होगा जब तक कि समाज का वर्तमान ढाँचा समाप्त नहीं हो जाता, प्रत्येक व्यवस्था में परिवर्तन या क्रान्ति नहीं हो जाती और सृष्टि में एक नवीन युग का सूत्रापात नहीं हो जाता।

निकट भविष्य में यह युद्ध अन्तिम रूप में लड़ा जायेगा और तब यह निर्णायक युद्ध होगा। साम्राज्यवाद एवं पूँजीवाद कुछ समय के मेहमान हैं। यही वह युद्ध है जिसमें हमने प्रत्यक्ष रूप में भाग लिया है। हम इसके लिए अपने पर गर्व करते हैं कि इस युद्ध को न तो हमने प्रारम्भ ही किया है, न यह हमारे जीवन के साथ समाप्त ही होगा।

– फाँसी से तीन दिन पूर्व भगतसिंह, राजगुरू, सुखदेव द्वारा फाँसी के बजाय गोली से उड़ाये जाने की माँग करते हुए पंजाब के गवर्नर को लिखे गये पत्र के अंश

पानीपत रिफ़ाइनरी के असंगठित मज़दूरों का संघर्ष : अमानवीय शोषण-उत्पीड़न के ख़िलाफ़ श्रमिकों के गुस्से का विस्फोट

● बिगुल संवाददाता

पिछले कुछ दिनों के दौरान देशभर की रिफ़ाइनरियों और पावर प्लाण्टों में मज़दूरों के बड़े संघर्ष हुए हैं। इनमें बरौनी रिफ़ाइनरी (बिहार), पानीपत रिफ़ाइनरी (हरियाणा), ओबरा पावर प्लाण्ट (सोनभद्र, यूपी), अल्ट्राटेक सीमेण्ट प्लाण्ट (रीवा, एमपी), अदानी पावर प्लाण्ट (सिंगरोली, एमपी), थर्मल पावर प्रोजेक्ट (बक्सर, बिहार), अदानी पावर प्लाण्ट (रायपुर, छत्तीसगढ़) आदि के संघर्ष प्रमुख हैं। इन संघर्षों ने एक बार फिर से यह दिखा दिया है कि मुनाफ़े पर आधारित इस व्यवस्था में शोषण के ख़िलाफ़ मज़दूरों की बग़ावतें लाज़िमी हैं। धन्नासेठों की चाकरी में लगी शासन-सत्ता द्वारा तानाशाही के बल पर इन विद्रोहों को दबाया और कुचला तो जा सकता है लेकिन इन्हें ख़त्म नहीं किया जा सकता। अमानवीय शोषण-उत्पीड़न और दमन के ख़िलाफ़ मज़दूरों के अन्दर पलता आक्रोश सतह के नीचे खदबदाता रहता है और फिर अन्ततोगत्वा कोई छोटी-सी घटना भी इसमें पलीता लगाने का काम कर देती है। जुझारू तेवर वाले उपरोक्त संघर्षों में से ज़्यादातर या लगभग सभी का चरित्र स्वतःस्फूर्त वाला रहा। यानी इन सभी संघर्षों में श्रमिकों को संगठित करने वाले, माँगों को सूत्रबद्ध करने वाले और समझौता वार्ता में मज़दूर पक्ष को सांगोपांग ढंग से पेश करने वाले नेतृत्व का अभाव देखने को मिला। निश्चय ही अपने बीच से सही नेतृत्व चुनकर यूनियन के रूप में संगठित होना फ़िलहाल इन सभी जगहों के संघर्षों के लिए ज़रूरी तात्कालिक कार्यभार बनता है।

हरियाणा के पानीपत में स्थित 'इण्डियन ऑयल कॉरपोरेशन लिमिटेड' में कार्यरत श्रमिकों का संघर्ष 23 फ़रवरी से शुरू हुआ था। 'बिगुल मज़दूर दस्ता' के साथी शुरू से ही इस आन्दोलन के समर्थन में मौजूद रहे थे। दो दिन पहले हुई एक दुर्घटना जिसमें कई श्रमिक घायल हो गये थे, ने इस संघर्ष को भड़काने में चिंगारी का काम किया। इसके बाद रिफ़ाइनरी के विस्तार और निर्माण कार्यों में लगे हज़ारों ठेका श्रमिकों ने हड़ताल और प्रदर्शन शुरू कर दिया। रिफ़ाइनरी में कार्यरत हज़ारों श्रमिक काम करने की अमानवीय परिस्थितियों, शोषण और प्रशासनिक उदासीनता से हद से ज़्यादा परेशान थे। यहाँ कार्यरत मज़दूर काम के घण्टे, ओवरटाइम, परिवहन व्यवस्था, शौचालय की सुविधा, ईएसआई-पीएफ़, कैण्टीन की सुविधा, सुरक्षाकर्मियों के ख़राब व्यवहार आदि जैसे मुद्दों को लम्बे समय से उठाते रहे थे। लेकिन रिफ़ाइनरी प्रशासन ने इनकी माँगों पर कभी कोई ध्यान नहीं दिया।

हरियाणा के पानीपत में स्थित इस रिफ़ाइनरी की विभिन्न इकाइयों और विस्तार योजनाओं में 30 से 40 हज़ार मज़दूर-कर्मचारी काम करते हैं। इनमें से ज़्यादातर श्रमिक ठेकेदारों के तहत कार्यरत हैं। यहाँ बड़ी ठेकेदार कम्पनियों और छोटे ठेकेदारों का पूरा जाल मौजूद है जिनके ज़रिये मज़दूरों को काम पर रखा जाता है। ये ठेकेदार कम्पनियाँ और छोटे ठेकेदार मज़दूरों पर जोंक की तरह चिपके रहते हैं और उनके थोड़े-से वेतन से भी "अपना हिस्सा" उड़ाते रहते हैं। तमाम कम्पनियों में दमन और शोषण का सबसे ज़्यादा सामना ठेका श्रमिकों को ही करना पड़ता है। जानकारी के अनुसार पानीपत रिफाइनरी की कुल रिफ़ाइनिंग क्षमता लगभग 15 मिलियन टन प्रति वर्ष (एमटीपीए) तक पहुँच चुकी है लेकिन हज़ारों ठेका मज़दूर, जो इस रिफ़ाइनरी के निर्माण, रखरखाव और उत्पादन कार्यों में लगे हैं, आज अपने बुनियादी अधिकारों तक से महरूम हैं। यहाँ कार्यरत मज़दूरों के आरोप हैं कि उनपर 12-12 घण्टे काम कराने का दबाव बनाया जाता है, ओवरटाइम का समुचित भुगतान नहीं होता, वेतन में देरी होती है, ईएसआई-पीएफ़ जैसे अधिकार नहीं मिलते और आवाज़ उठाने पर ठेकेदारों द्वारा काम से निकालने की धमकियाँ दी जाती हैं। यही नहीं काम करने के हालात बेहद अमानवीय हैं। श्रमिकों को पेयजल, शौचालय, परिवहन, कैण्टीन और पर्याप्त सुरक्षा उपकरण जैसी मूलभूत सुविधाएँ भी ठीक से नहीं मिलती हैं। रिफ़ाइनरी जैसे संवेदनशील और जोखिमपूर्ण कार्यस्थल पर इन अमानवीय हालात में श्रमिकों से काम लिया जाना सीधे तौर पर उनके जीवन के साथ खिलवाड़ है। ध्यान रहे श्रमिकों के ये हालात तो तब हैं जब मज़दूर-कर्मचारी विरोधी चार श्रम संहिताओं को अभी लागू होना है। ये श्रम संहिताएँ लागू होने के बाद श्रमिकों की स्थिति का अन्दाज़ा सहज ही लगाया जा सकता है।

इस अमानवीय और असंवेदनशील रवैये से तंग आकर श्रमिकों ने जैसे ही शान्तिपूर्ण प्रदर्शन और हड़ताल का रास्ता अपनाया, वैसे ही पुलिस और सीआईएसएफ़ के जवान मुस्तैदी के साथ इन्हें दबाने में जुट गये। लेकिन श्रमिकों के संख्याबल और इनके बुलन्द हौसलों के सामने पुलिस-प्रशासन पंगु नज़र आया। श्रम विभाग से लेकर डीसी-एसपी समेत पूरा प्रशासनिक अमला आनन-फ़ानन में तुरन्त सक्रिय हो गया और श्रमिकों को वापस काम पर भेजने की जुगत भिड़ाने लगा। 23 फरवरी को जब मज़दूरों का गुस्सा फूट पड़ा तो रिफ़ाइनरी प्रशासन और स्थानीय प्रशासन को मजबूर होकर हरकत में आना पड़ा। श्रमिकों की ताक़त के सामने प्रशासन तत्काल समझौते की टेबल पर आ गया। मज़दूरों की काम के घण्टे, ओवरटाइम के दुगुने रेट, साप्ताहिक छुट्टी से लेकर पेयजल, परिवहन सुविधा, शौचालय जैसी माँगों को कागज़ पर तात्कालिक तौर पर मान लिया गया है लेकिन इन्हें लागू कितना किया जायेगा यह थोड़े वक़्त बाद ही स्पष्ट हो जायेगा। ज़ाहिरा तौर पर बिना संगठन और यूनियन के पुरानी रीत के लौटने में ज़्यादा वक़्त नहीं लगेगा। फ़िलहाल श्रमिकों में इस बात को लेकर खासा रोष है कि उनकी वेतन वृद्धि से जुड़ी सबसे बुनियादी माँग को नज़रअन्दाज़ कर दिया गया। इस संघर्ष के दौरान एक कमी जो सामने आयी वह थी श्रमिकों की कोई यूनियन न होना। रिफ़ाइनरी प्रशासन ने भी इस कमी को जल्द ही भाँप लिया था। इस चीज़ ने मज़दूरों की मोलभाव करने की ताक़त को भी कमज़ोर किया। मज़दूरों ने जुझारू और शानदार संघर्ष लड़ा लेकिन कोई ईमानदार यूनियन और संगठन नहीं होने की सूरत में यह संघर्ष 28 फ़रवरी तक आते-आते कमज़ोर पड़ने लगा। रिफ़ाइनरी प्रशासन से लेकर पुलिस तंत्र और ठेकेदारों के पूरे गठजोड़ ने हड़ताल को वापस करवाने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा रखा था।

इसके अलावा पानीपत रिफ़ाइनरी के श्रमिकों को अगर अपने भावी संघर्षों को मज़बूती देनी है तो उन्हें अपने संघर्ष में श्रमिक आन्दोलन में मौजूद अर्थवाद, स्वतःस्फूर्तवाद, अराजकतावादी संघाधिपत्यवाद जैसी विभिन्न विजातीय प्रवृत्तियों से भी सावधान रहना होगा। वैसे श्रमिकों को अपने हालिया आन्दोलन के दौरान भी इन प्रवृत्तियों के वाहक तथाकथित नेताओं की कारगुज़ारियों का कड़वा अनुभव हुआ। 'बिगुल' के पाठकों के सामने भी इसका ज़िक्र करना ग़लत नहीं होगा। मज़दूरों के 23 फ़रवरी को हड़ताल पर चले जाने के बाद अगले दिन से ही कई मज़दूर संगठनों और यूनियनों ने इस संघर्ष का समर्थन किया। 24 और 25 फ़रवरी को मज़दूर बड़े पैमाने पर हड़ताल जारी रखते हुए रिफ़ाइनरी के P-25 स्टेशन पर एकत्रित हुए थे। 25 फ़रवरी को प्रशासन द्वारा रिफ़ाइनरी के ठेकेदार को एक लिखित आदेश में कुछ बुनियादी श्रम क़ानून लागू करने का आश्वासन दिया गया, जिसे देर शाम रिफ़ाइनरी गेटों पर चस्पा कर दिया गया। ज़ाहिरा तौर पर इस एकतरफ़ा 'समझौते' में प्रशासन ने केवल काग़ज़ों पर श्रम क़ानून लागू करने की बात कही, जिनकी धज्जियाँ ठेकेदार और प्रधान नियोक्ता आईओसीएल बहुत पहले से ही उड़ाते रहे थे। देर शाम मज़दूरों के बीच यह बात भी फैल गयी कि न्यूनतम मज़दूरी 'सी' कैटेगरी के हिसाब से दी जायेगी, जबकि पानीपत रिफ़ाइनरी की श्रेणी 'बी' या 'ए' होनी चाहिए। इसलिए मजदूरों ने तीसरे दिन यानी 25 फ़रवरी को भी हड़ताल जारी रखी और रोष प्रदर्शन करते हुए रिफ़ाइनरी गेट पर मीटिंग की।

26 तारीख़ को जब मैनेजमेण्ट ने मज़दूरों के प्रतिनिधिमण्डल को बातचीत के लिए बुलाया तो इसमें 'सीटू' (सीपीएम से सम्बद्ध केन्द्रीय ट्रेड यूनियन) तथा 'मासा' (मज़दूर अधिकार संघर्ष अभियान जोकि शंकरजी की बारात और भानुमति के कुनबे-नुमा कई संगठनों का मंच है!) के घटक संगठन सीएसटीयू के प्रतिनिधि भी शामिल हुए। गेट मीटिंग में बिना तथ्यों की पड़ताल किये सीएसटीयू (मासा के घटक) के नेताओं ने मज़दूरों के बीच वेतन कैटेगरी को लेकर भ्रम फैलाया। मैनेजमेण्ट के साथ लम्बी वार्ता के बाद लेबर कमिश्नर व आईओसीएल प्रशासन केवल श्रम क़ानूनों को लागू करने का लिखित समझौता करने को तैयार था, लेकिन कैटेगरी बढ़ाने या न्यूनतम मज़दूरी में वृद्धि को लेकर उन्होंने साफ़ मना कर दिया। वार्ता के बाद सीटू और सीएसटीयू ने मज़दूरों को "समझाने" की कोशिश की, लेकिन अधिकतर ठेका मज़दूर इस पर असमंजस में थे। इसका मुख्य कारण सीएसटीयू द्वारा मज़दूरों के बीच कैटेगरी को लेकर फैलाया गया भ्रम भी था। सीएसटीयू और मासा के रवैये पर मासा के ही घटक संगठन के एक नेता ने फ़ेसबुक पोस्ट में इसपर सवाल भी उठाये थे। अगले दिन यानी 27 फ़रवरी के दिन मज़दूर चार नम्बर गेट पर एकत्रित हुए और तीन नम्बर गेट तक रैली के रूप में पहुँचे। इस दिन भी मैनेजमेण्ट ने प्रतिनिधियों को वार्ता के लिए बुलाया। पहले दिन की वार्ता में एड़ियाँ उचकाकर वार्ता में शामिल होने वाले सीएसटीयू के प्रतिनिधियों ने वार्ता में जाने से साफ़ इन्कार कर दिया! इनके रवैये से खफ़ा होकर सीटू के नेता भी वार्ता के लिए नहीं गये।

28 फ़रवरी, यानी हड़ताल के छठे दिन भी मज़दूर रिफ़ाइनरी के गेट नम्बर चार पर सभा करते रहे और रैली निकालकर गेट नम्बर तीन तक पहुँचे। लेकिन इस दिन रैली में मज़दूरों की संख्या पहले की तुलना में काफी कम थी। पूरे रिफ़ाइनरी क्षेत्र में पुलिस-प्रशासन, बाउंसरों और ठेकेदारों की मौजूदगी भी पहले से अधिक थी, जो साफ़ तौर पर मजदूरों को आतंकित करने के लिए थी ताकि कमज़ोर पड़ती हड़ताल को किसी भी तरह तोड़ा जा सके। रैली के बाद गेट मीटिंग के दौरान एक बार फिर प्रशासन ने वार्ता के लिए बुलाया, लेकिन सीएसटीयू ने इस दिन फिर बैठक में शामिल होने से इन्कार कर दिया। अन्ततः पाँच श्रमिक ही वार्ता के लिए गये। पुलिस-प्रशासन के दबदबे में हुई वार्ता के बाद इन पाँचों श्रमिकों को प्रशासन ने "सहमत" कर लिया, जिसमें इस बात की पूरी सम्भावना है कि उन पर दबाव डाला गया होगा। अब सीएसटीयू के इस रवैये को कैसे देखा जाये!? यानी जब आन्दोलन अपने चढ़ान पर था तो चेहरा चमकाने के लिए वार्ताकार की भूमिका में सबसे आगे और जब आन्दोलन उतार की ओर जाता दिखा तो वार्ताकार का कोट खूँटी पर टाँग दिया गया और पर्यवेक्षक की भूमिका में आ गये! यानी मीठा-मीठा गप-गप और कड़वा-कड़वा थू! यही नहीं मासा का एक और कारनामा भी दर्शनीय है। मासा ने अपने फ़ेसबुक पेज से इस संघर्ष से सम्बन्धित 27 फ़रवरी से पहले की सभी पोस्टें अपने फ़ेसबुक पेज से हटा दीं या उन्हें प्राइवेट कर दिया। इसका कारण अभी तक हमारी समझ में नहीं आया है!

सीएसटीयू की मौक़ापरस्ती रिफ़ाइनरी के मज़दूरों के सामने भी उजागर हो गयी। आम सभा में मजदूरों ने उनसे सवाल किया कि जब आप शुरुआती वार्ता में शामिल हो सकते थे तो अब क्यों नहीं हुए। इस पर सीएसटीयू और मासा के प्रतिनिधि कोई स्पष्ट जवाब नहीं दे पाये और बगलें झाँकते नज़र आये। आम सभा में ही 'बिगुल मज़दूर दस्ता' के साथियों ने भी सीएसटीयू की इस मौक़ापरस्ती पर सवाल उठाये। इसके नेताओं ने अपनी परिचित 'मज़दूरवाद' की लाइन दोहराते हुए कहा कि यह मज़दूरों का आन्दोलन है, इसलिए मज़दूर ही फ़ैसला करेंगे, मासा तो केवल सहयोग के लिए आया है! इस पर सवाल उठाया गया कि यदि सब कुछ मज़दूर ही तय करेंगे, तो आप यहाँ किस भूमिका में आये हैं? इस तर्क से तो इन्हें पहली वार्ता में भी शामिल नहीं होना चाहिए था। शुरुआती फ़ेसबुक पोस्टों में तो इनके द्वारा चीज़ों को ऐसे पेश किया जा रहा था जैसे लगे कि मासा आन्दोलन का नेतृत्व कर रहा है लेकिन जब हड़ताल कमज़ोर पड़ने लगी तो इन्होंने अपनी भूमिका बदलने में मिनट भी नहीं लगाया। दरअसल यह वही संगठन है जिसने मारुति से लेकर होण्डा तक के मज़दूर आन्दोलनों जैसे कई सम्भावनाशील संघर्षों में भी अवसरवादी भूमिका निभाकर इन्हें कमज़ोर किया था। पिछले दिनों इन्होंने मारुति के पुराने काण्ट्रैक्ट मज़दूरों को नौकरी दिलाने की मीठी गोली दी थी। इसे लेकर ऐसा तूमार बाँधा गया था कि पूछिए मत!

(पेज 2 पर जारी)

पेरिस कम्यून : पहले मज़दूर राज की याद आज भी अँधेरे में जलती मशाल की तरह हमें राह दिखा रही है

आज भारत ही नहीं, पूरी दुनिया के मज़दूर पूँजी की लुटेरी ताक़त के तेज़ होते हमलों का सामना कर रहे हैं, और मज़दूर आन्दोलन बिखराव, ठहराव और हताशा का शिकार है। ऐसे में इतिहास के पन्ने पलटकर मज़दूर वर्ग के गौरवशाली संघर्षों से सीखने और उनसे प्रेरणा लेने की अहमियत बहुत बढ़ जाती है। आज से 155 वर्ष पहले, 18 मार्च 1871 को फ्रांस की राजधानी पेरिस में पहली बार मज़दूरों ने अपनी हुकूमत क़ायम की। इसे पेरिस कम्यून कहा गया। उन्होंने शोषकों की फैलायी इस सोच को ध्वस्त कर दिया कि मज़दूर राज-काज नहीं चला सकते। पेरिस के जाँबाज़ मज़दूरों ने न सिर्फ़ पूँजीवादी हुकूमत की चलती चक्की को उलटकर तोड़ डाला, बल्कि 72 दिनों के शासन के दौरान आने वाले दिनों का एक छोटा-सा मॉडल भी दुनिया के सामने पेश कर दिया कि समाजवादी समाज में भेदभाव, ग़ैर-बराबरी और शोषण को किस तरह ख़त्म किया जायेगा। आगे चलकर 1917 की रूसी मज़दूर क्रान्ति ने इसी कड़ी को आगे बढ़ाया।

मज़दूर वर्ग के इस साहसिक कारनामे से फ्रांस ही नहीं, सारी दुनिया के पूँजीपतियों के कलेजे काँप उठे। उन्होंने मज़दूरों के इस पहले राज्य का गला घोंट देने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा दिया और आख़िरकार मज़दूरों के कम्यून को उन्होंने ख़ून की नदियों में डुबो दिया। लेकिन कम्यून के सिद्धान्त अमर हो गये।

पेरिस कम्यून की हार से भी दुनिया के मज़दूर वर्ग ने बेशक़ीमती सबक़ सीखे। पेरिस के मज़दूरों की क़ुर्बानी मज़दूर वर्ग को याद दिलाती रहती है कि पूँजीवाद को मटियामेट किये बिना उसकी मुक्ति नहीं हो सकती।

आइए देखें कि मज़दूर वर्ग के महान नेताओं, मार्क्स और एंगेल्स ने उस वक़्त इसके बारे में क्या कहा था :

कार्ल मार्क्स :

"यदि कम्यून को कुचल भी दिया गया, तब भी संघर्ष सिर्फ़ स्थगित होगा। कम्यून के सिद्धान्त शाश्वत और अनश्वर हैं, जबतक मज़दूर वर्ग अपनी मुक्ति हासिल नहीं कर लेता, तबतक ये सिद्धान्त बार-बार अपनी घोषणा करते रहेंगे। पेरिस कम्यून का पतन हो सकता है, लेकिन जो सामाजिक क्रान्ति इसने प्रारम्भ की है, वह विजयी होगी। इसकी ज़मीन सर्वत्र मौजूद है।"

"18 मार्च का गौरवमय आन्दोलन मानव जाति को वर्ग-शासन से सदा के लिए मुक्त कराने वाली महान सामाजिक क्रान्ति का प्रभात है।"

"मजदूरों के पेरिस और उसके कम्यून को नये समाज के गौरवपूर्ण अग्रदूत के रूप में हमेशा याद किया जायेगा। इसके शहीदों ने मजदूर वर्ग के महान हृदय में अपना स्थान बना लिया है।"

फ्रेडरिक एंगेल्स :

"बुर्जुआ वर्ग को अपनी 14 जुलाई या 22 सितम्बर को उत्सव मनाने दो। सर्वहारा वर्ग का त्योहार तो सभी जगह हमेशा 18 मार्च ही होगा।"

मार्क्स और एंगेल्स :

"सम्पत्तिवान वर्गों की संयुक्त सत्ता के खिलाफ़ अपने संघर्ष में मज़दूर वर्ग अपने को, सम्पत्तिवान वर्गों द्वारा स्थापित तमाम पुरानी पार्टियों के विरुद्ध और उनसे भिन्न, एक राजनीतिक पार्टी में संगठित करके ही, एक वर्ग की हैसियत से कार्रवाई कर सकता है।"

"कम्यून, जो पुरानी दुनिया के शासकों के विचार में पूर्ण रूप से नष्ट हो चुका है, पहले के किसी भी समय के मुक़ाबले आज और ज़्यादा जीवनी-शक्ति से ओतप्रोत है। इसलिए, हम आप लोगों के साथ मिलकर यह नारा बुलन्द कर सकते हैं : कम्यून ज़िन्दाबाद।"

भारतीय शिक्षा व्यवस्था और विज्ञान के विकास की पोल खुल गयी एआई समिट और गलगोटिया यूनिवर्सिटी प्रकरण में

(पेज 24 से आगे)

गए अमेरिकी-इज़राइली साम्राज्यवादी हमले के बाद पश्चिमी एशिया में शुरू हुए युद्ध के कारण पैदा हुए गैस सिलेण्डर संकट में मोदी की यह "थ्योरी" विशेष चर्चा का विषय रही!

• 2014 में ही जलवायु परिवर्तन को लेकर एक बच्चे के सवाल पर प्रधानमंत्री जी ने बेशर्मी के साथ कहा कि यह जलवायु परिवर्तन नहीं है, बल्कि हमारी सहने की क्षमता कम हो गयी है!

• 2020 में मोदी जी ने पवन टर्बाइनों के लिए एक "नया नुस्खा" इजाद कर दिया और सुझाव दिया कि टर्बाइनों को हवा से नमी निकालकर स्वच्छ पानी बनाने और यहाँ तक कि वातावरण से ऑक्सीजन अलग करने के लिए डिज़ाइन किया जा सकता है!

ऐसे ही दर्जनों बयान भाजपा के अन्य मंत्रियों-नेताओं द्वारा भी दिये गये हैं जिसमें डार्विन के उद्भव के सिद्धान्त को ग़लत बताने से लेकर महाभारत के समय इंटरनेट और सेटेलाइट होने तथा वेद में तमाम वैज्ञानिक खोजों के होने के झूठे दावे किये गये हैं।

ऐसा नहीं है कि यह विज्ञान और तर्कणा विरोधी बातें बस बयानबाज़ी तक सीमित हैं। सरकार द्वारा सांस्थानिक रूप से छद्म विज्ञान को बढ़ावा देने की पूरी कोशिश की जा रही है। सरकार द्वारा शिक्षा को लेकर लायी गयी तमाम नितियाँ और उठाये गये सारे क़दम यह साफ़-साफ़ बताते हैं कि कैसे योजनाबद्ध तरीक़े से शिक्षा का निजीकरण किया जा रहा है और इसे बर्बाद किया जा रहा है। **छात्रों के तर्क करने की शक्ति पर हमला किया जा रहा है, उनकी आलोचनात्मक क्षमता को बाधित करके उसे सचेतन तौर कुन्द किया जा रहा है, वे सरकार की किसी भी नीति या बात पर सवाल न खड़ा करें, बस चुपचाप अनुशासित होकर फ़ासीवादी सरकार के हुक्म की तामील करें इसके लिए ही उन्हें अवैज्ञानिक और अतार्किक बनाने की पुरज़ोर कोशिश की जा रही है ताकि उन्हें आसानी से फ़ासीवादी उन्मादी भीड़ का हिस्सा बनाया जा सके। पाठ्यक्रम से उद्भव के सिद्धान्त, पीरियॉडिक टेबल आदि विषयों का हटाया जाना, इतिहास का मिथ्याकरण करना आदि इसी दूरगामी फ़ासीवादी परियोजना के परिणाम हैं।**

इसके अलावा विज्ञान के विकास के लिए सही शोधों व अनुसन्धानों पर खर्च करने के बजाय ऐसे शोधों पर पानी की तरह पैसा बहाया जा रहा है जिनका विज्ञान से दूर-दूर तक कोई रिश्ता नहीं है। नीचे सरकार द्वारा ऐसे ही उठाये गये क़दमों की एक सूची दी गयी है:

1) **पंचगव्य और 'गाय विज्ञान' (SUTRA-PIC):** सरकार ने स्वदेशी गायों के उत्पादों (दूध, मूत्र, गोबर) पर शोध के लिए एक औपचारिक कार्यक्रम शुरू किया है। इसका पूरा नाम 'अनुसंधान संवर्धन के माध्यम से वैज्ञानिक उपयोग – देसी गायों से प्राप्त प्रमुख उत्पाद' है। सरकार द्वारा इसके लिए लगभग **98 करोड़ रुपये** का बजट प्रस्तावित किया गया, जिसका उद्देश्य गाय के मूत्र और गोबर से दवाइयाँ, कैंसर का इलाज और अन्य उपयोगिता वाली वस्तुएं बनाना है।

2) पौराणिक संरचनाओं पर शोध (राम सेतु और सरस्वती नदी): पौराणिक कथाओं में वर्णित स्थलों की "वैज्ञानिक पुष्टि" के लिए सरकारी संस्थानों का उपयोग किया गया। भारतीय ऐतिहासिक अनुसंधान परिषद (ICHR) ने राम सेतु के "मानव निर्मित" होने के प्रमाण खोजने के लिए पानी के नीचे शोध परियोजनाएँ शुरू कीं और बिना किसी वैज्ञानिक सबूत के इसपर पानी की तरह पैसे बहाये गये। इसी तरह हरियाणा और राजस्थान सरकार ने 'लुप्त सरस्वती नदी' की खोज के लिए करोड़ों रुपये खर्च किये और खुदाई करवाई, ताकि इसे हड़प्पा सभ्यता और वेदों से जोड़ा जा सके।

3) भारतीय ज्ञान प्रणाली (IKS): शिक्षा मंत्रालय के तहत प्राचीन भारतीय विज्ञान को आधुनिक शिक्षा से जोड़ने के लिए भारी निवेश किया जा रहा है ताकि इतिहास का मिथ्यकियाकरण करके इसे ज़बरदस्ती विज्ञान से जोड़ा जा सके। अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद (AICTE) के तहत IKS डिवीजन के लिए 2025-2030 के लिए **405.78 करोड़ रुपये** आवण्टित किये गये हैं।

4) ज्ञान भारतम मिशन: यह मिशन शिक्षा मंत्रालय के तहत 'भारतीय ज्ञान प्रणाली' (IKS) को बढ़ावा देने की एक बड़ी योजना है जिसका मुख्य उद्देश्य भारत की प्राचीन विद्याओं, पाण्डुलिपियों और पारम्परिक ज्ञान को आधुनिक शिक्षा के साथ जोड़ना है। सरकार ने इसके लिए **482.85 करोड़ रुपये** का भारी-भरकम बजट आवण्टित किया है। इसका एक बड़ा हिस्सा प्राचीन ग्रंथों के संरक्षण और बिना किसी वैज्ञानिक आधार के उन्हें कॉलेजों के पाठ्यक्रमों में शामिल करने पर खर्च किया जा रहा है।

5) भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (ASI): इस संस्थान का इस्तेमाल तो खुले आम धार्मिक उन्माद फैलाने के लिए किया जा रहा है। धार्मिक स्थलों का उत्खनन और सर्वेक्षण करने के नाम पर अयोध्या, ज्ञानवापी मस्जिद (वाराणसी), धार और सम्भल जैसी कई जगहों पर पहले ही यह किया जा चुका है। इसी को और सुचारू रूप से करने के लिए बजट 2025 के अनुसार, ASI को **1,278.49 करोड़ रुपये** आवण्टित किये गये हैं।

कुल मिलाकर एआई समिट में हुई उपरोक्त घटना बस कोई अकेली घटना नहीं बल्कि पिछले एक दशक से भी अधिक समय से फ़ासीवादी भाजपा सरकार द्वारा अंजाम दी जा रही शिक्षा व्यवस्था और विज्ञान की व्यवस्थागत बर्बादी को दर्शाता है। गलगोटिया यूनिवर्सिटी बस उसी का एक प्रातिनिधिक उदाहरण है। आज जिस क़दर उपरोक्त तमाम तरीक़ों से लोगों की सोचने-समझने और तर्क करने की क्षमता को कुन्द किया जा रहा है, उस सूरत में यह बेहद ज़रूरी बन जाता है कि इन क़दमों का पुरज़ोर विरोध किया जाये और छात्रों-युवाओं समेत देश के आम लोगों में तार्किकता और वैज्ञानिक मूल्यों का बड़े पैमाने पर प्रचार-प्रसार किया जाये अन्यथा आने वाले समय में ऐसे कई गलगोटिया यूनिवर्सिटी पैदा होंगे जो हमारे देश को दशकों पीछे धकेल देंगे!

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2023-2026
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

भारतीय शिक्षा व्यवस्था और विज्ञान के विकास की पोल खुल गयी एआई समिट और गलगोटिया यूनिवर्सिटी प्रकरण में

• आदित्य

16-18 फ़रवरी के बीच देश की राजधानी में सम्पन्न हुआ एआई (आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस) समिट सिर्फ़ देश में ही नहीं, दुनिया भर में सुर्ख़ियों में रहा। लेकिन यह नयी और बेहतरीन एआई टेक्नोलॉजी की वजह से या शानदार मेज़बानी की वजह से नहीं बल्कि ठीक इसके उलट गलगोटिया यूनिवर्सिटी द्वारा पहले से विकसित चीनी तकनीक को अपना बताकर झूठा दावा करने तथा बेहद ख़राब मेज़बानी करने के कारण चर्चा में रहा! इस एआई समिट ने तीन दिन में ही पूरी दुनिया के सामने भारत के "विश्वगुरु" होने के दावे की पोल खोल दी।

यह एआई समिट पहले दिन से ही अव्यवस्था, अराजकता, अफ़रातफ़री और उथल-पुथल की वजह से सुर्ख़ियों में था। पहले दिन से ही कोई सुचारु मैनेजमेण्ट नहीं होने की वजह से घण्टों तक लम्बी लाइनें लगी रहीं। "दुनिया के सबसे बड़े" एआई समिट में इण्टरनेट की सुविधा ही ठप्प हो गयी! हर दिन के साथ इस एआई समिट की पोल खुलती रही। वीवीआइपी लोगों के कारण आम लोगों को पहले दिन से ही तमाम समस्याओं का सामना करना पड़ा। समिट के तीसरे दिन सैकड़ों देशी-विदेशी लोगों को कई किलोमीटर पैदल चलना पड़ा, सिर्फ़ इसलिए क्योंकि प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी उस रास्ते से गुज़रने वाले थे, और इसलिए बिना कोई व्यवस्था किये सारे रास्तों को बन्द कर दिया गया।

लेकिन इस शिखर सम्मेलन को "शिखर" पर ले जाने का काम गलगोटिया नाम की एक प्राइवेट यूनिवर्सिटी ने किया। दिल्ली में हुए इस सम्मेलन में गलगोटिया यूनिवर्सिटी की प्रोफ़ेसर द्वारा चीन के रोबोडॉग यूनिट्री गो2 को यूनिवर्सिटी द्वारा बनाया गया बताया गया! इतना ही नहीं, इसके बाद सॉकर रोबोट को भी बनाने का दावा विश्वविद्यालय द्वारा किया गया! लेकिन सच्चाई सामने आते ही गलगोटिया यूनिवर्सिटी के एआई पर 350 करोड़ रुपये ख़र्च करने की पोल खुल गयी। हद तो तब हो गयी जब देश के 'टेक्नोलॉजी जायण्ट' विप्रो ने भी इसे अपना अनुसन्धान बताते हुए प्रदर्शित किया और फ़िर देश के आईटी मंत्री अश्विनी वैष्णव ने भी इस रोबोट के कसीदे पढ़ते हुए ट्वीट कर डाले!

वैसे जिस देश का प्रधानमंत्री ही अपनी डिग्री को लेकर फ़र्ज़ीवाड़ा करता हो वहाँ एक निजी विश्वविद्यालय का फ़र्ज़ीवाड़ा करना कोई चौंकाने वाली बात नहीं होनी चाहिए।

गलगोटिया यूनिवर्सिटी के पिछले कारनामे और इसका इतिहास

यह पहली बार नहीं है कि गलगोटिया यूनिवर्सिटी अपने कारनामों के कारण सुर्ख़ियों में आयी है। इससे पहले भी दो साल पहले गलगोटिया यूनिवर्सिटी के छात्र अपनी "बौद्धिकता" का परिचय देते हुए मोदी और भाजपा के समर्थन में प्रदर्शन करने उतरे थे और तब भी गलगोटिया ने अपनी "शानदार" शिक्षा व्यवस्था की मिसाल दुनिया के सामने पेश की थी। प्रदर्शन के दौरान जब इन छात्रों से प्रदर्शन के बारे में पूछा गया था तब एक भी छात्र बता नहीं पाया कि वे प्रदर्शन क्यों कर रहे हैं! हद तो तब हो गयी थी जब ज़्यादातर गलगोटिया के "स्कॉलर" हाथ में लिए हिन्दी पोस्टरों को भी नहीं पढ़ सके!

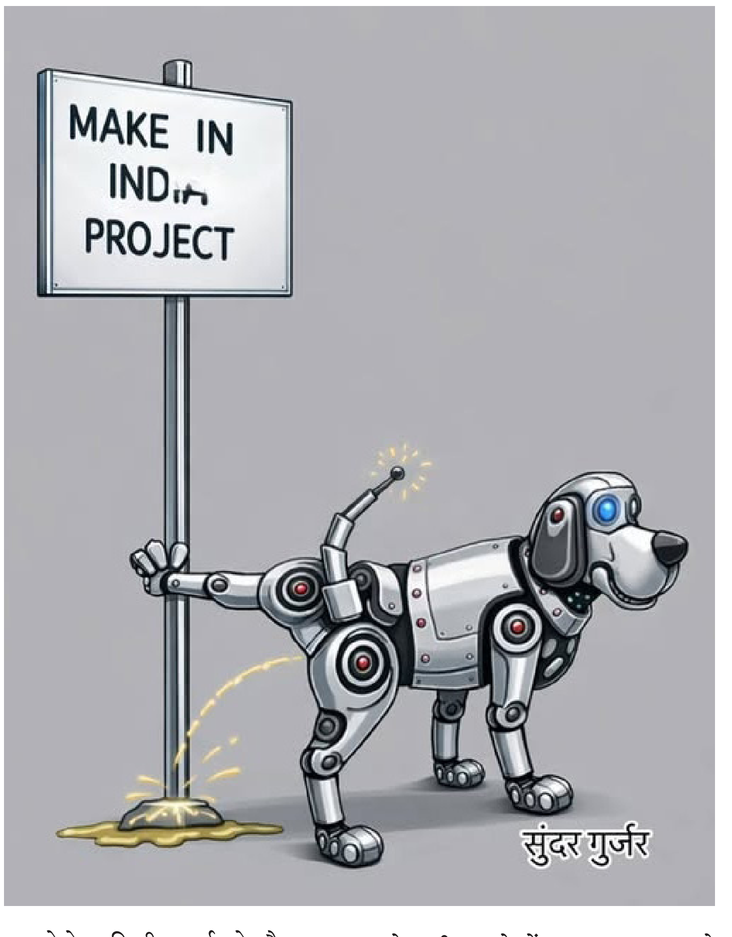

यह अनायास नहीं है कि इस विश्विद्यालय को देश का प्रतिनिधित्व करने के लिए एआई समिट जैसे सम्मेलन में चुना जाता है। यह वही गलगोटिया यूनिवर्सिटी है जिसने पिछले 12 सालों में भाजपा सरकार की चाटुकारिता करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। पिछले कुछ वर्षों में, विश्वविद्यालय के संस्थापक और कुलाधिपति सुनील गलगोटिया ने संस्थान के मिशन को भाजपा के नेतृत्व वाली सरकार की राजनीतिक दृष्टि के अनुरूप बताया है। सुनील गलगोटिया ने अपने बयानों में कहा है कि गलगोटिया विश्वविद्यालय "भारत को विश्वगुरु बनाने के प्रधानमंत्री मोदी के दृष्टिकोण को साकार करने के लिए पूरी तरह से प्रतिबद्ध है।" उन्होंने कई बार देश के प्रधानमंत्री और उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ की प्रशंसा में कसीदे पढ़े हैं और उनके नेतृत्व को राज्य को निवेश और उच्च शिक्षा के उभरते केन्द्र में बदलने का श्रेय दिया है।

गलगोटिया विश्वविद्यालय ने सरकार के तलवे चाटने में कोई कमी नहीं छोड़ी है। इस बात का अन्दाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि 2020 में इस विश्विद्यालय ने यह रिसर्च पेश की थी कि कैसे थाली बजाने से कोरोना को भागना पड़ा! इसी विश्वविद्यालय ने सरकार द्वारा लाये गये छात्र विरोधी राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) 2020 को सही मायने में 100% लागू करने वाला पहला कैम्पस होने की बात कही है। तत्कालीन शिक्षा मंत्री रमेश पोखरियाल की मौजूदगी में आयोजित एक समारोह में यूनिवर्सिटी ने इस नीति के लिए 12-सूत्रीय रोडमैप को लागू करने की शपथ ली। इस रोडमैप में विश्वविद्यालय द्वारा सरकार द्वारा प्रस्तावित भारतीय ज्ञान प्रणाली को लागू करना भी शामिल था। आपको बता दें कि भारतीय ज्ञान प्रणाली सरकार द्वारा शिक्षा का मिथ्याकरण करने और छात्रों को तर्क और विज्ञान से दूर करने की एक फ़ासीवादी परियोजना है। इसके तहत प्राचीन ज्ञान को आधुनिक शिक्षा में समाहित करने के नाम पर छात्रों को ग़लत इतिहास और छद्म विज्ञान परोसा जायेगा।

इतना ही नहीं, विश्वविद्यालय ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) के साथ भी नज़दीकियाँ बनाकर रखी हैं। नवम्बर 2024 में गलगोटिया विश्वविद्यालय ने भारतीय शिक्षण मण्डल द्वारा आयोजित VIVIBHA 2024 (विकसित भारत का विज्ञन) कार्यक्रम में भाग लिया, जिसका सम्बन्ध सीधा संघ से है। इस कार्यक्रम में आरएसएस प्रमुख मोहन भगवत ने भी शिरकत की थी। इसी तरह गलगोटिया के कई कार्यक्रमों में संघ के लोगों का आना-जाना लगा रहता है।

विश्वविद्यालय का कहना है कि उसने 2017 और 2024 के बीच 2,430 पेटेण्ट के लिए आवेदन दिया है। लेकिन इन दावों की पोल भी इसी बात से खुल जाती है कि देश का सबसे अधिक शोध-केन्द्रित संस्थान आईआईटी मद्रास को माना जाता है और इस संस्थान ने 1975 में अपना पहला पेटेण्ट आवेदन दाखिल करने के बाद से आज तक लगभग 2,550 पेटेण्ट आवेदन ही दाखिल किये हैं।

सरकार की इसी चाटुकारिता का नतीजा है कि इस विश्वविद्यालय को पिछले पाँच सालों में सरकार द्वारा करोड़ों रुपये दिये गये। एनआईआरएफ़ की रिपोर्ट के मुताबिक़ 2021 के बाद से इस विश्वविद्यालय को अलग-अलग स्कीमों के तहत 6 करोड़ से ज़्यादा पैसे दिये गये हैं। इतना ही नहीं, विश्वविद्यालय को 'मेक इन इण्डिया कॉन्क्लेव फ़ॉर स्किल्ड मैनपावर डेवलपमेण्ट' में केन्द्रीय मंत्री राजनाथ सिंह द्वारा सम्मानित भी किया गया था। एक तरफ़ सरकार द्वारा निजी विश्वविद्यालयों को लगातार बढ़ावा दिया जा रहा है, वहीं दूसरी तरफ़ तमाम सरकारी संस्थानों को, जिनमें आईआईटी, एनआईटी आदि संस्थान भी शामिल हैं, उन्हें संस्थागत तरीक़े से बर्बाद किया जा रहा है।

देश की शिक्षा व्यवस्था की हक़ीक़त बयान करता गलगोटिया

गलगोटिया विश्वविद्यालय के इन झूठे दावों ने इस एआई समिट की पोल तो खोली ही, साथ में देश की शिक्षा व्यवस्था और विज्ञान के हालात की पोल भी खोलकर रख दी है। यह अनायास नहीं है कि गलगोटिया यूनिवर्सिटी जैसे निजी संस्थान इतने बड़े स्तर पर फ़र्ज़ीवाड़ा करने की कोशिश कर रहे हैं। आज देश की शिक्षा व्यवस्था को सरकार लगातार सोचे-समझे तरीक़े से बर्बाद करने में लगी है। भाजपा सरकार के आने के बाद से अब तक शिक्षा पर लगातार फण्ड कटौती की जा रही है। 2014 में शिक्षा के लिए बजट का 4.7 प्रतिशत आवण्टित किया गया था जिसको घटाकर 2024-25 में 2.5 प्रतिशत कर दिया गया। स्कूल शिक्षा और साक्षरता विभाग (डीएसईएल) का कुल बजट में हिस्सा 2014-15 में 2.75% से घटकर 2024-25 तक 1.51% हो गया, और उच्च शिक्षा विभाग का हिस्सा 2024-25 में घटकर 0.91% रह गया। 2014-15 और 2023-24 के बीच 89,441 सरकारी स्कूल बन्द कर दिये गये हैं। 2019 और 2021 के बीच, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) के वित्त पोषण को 10% कम कर दिया गया, जबकि आईआईटी में 20% की कटौती की गयी।

इस देश की सरकार गोबर और गोमूत्र से कैंसर के इलाज़ पर 3.5 करोड़ रुपये खर्च कर देती है! अब जिस देश में पाठ्यक्रम से उद्भव के सिद्धान्त, पीरियॉडिक टेबल आदि विषय हटाये जा रहे हैं, इतिहास का मिथ्याकरण किया जा रहा है, आईआईटी के डायरेक्टर भूतों में विश्वास करते हों, हिमालय की तबाही का कारण मांस खाने को बताते हों, उस देश की शिक्षा व्यवस्था की हालत का अन्दाज़ा सहज लगाया जा सकता है। लोगों की तार्किकता पर लगातार हमले किये जा रहे हैं और शिक्षा का निजीकरण करके उसे आमजन से दूर किया जा रहा है ताकि उसी आबादी को तथाकथित "धर्म की रक्षा" के नाम पर दुकानें-घर तोड़ने और आये दिन लोगों को पीटने के लिए इस्तेमाल किया जा सके। इसी प्रक्रिया को नयी शिक्षा नीति, एफ़वाईयूपी आदि जैसी नीतियाँ लाकर बढ़ावा दिया जा रहा है।

विज्ञान की बलि चढ़ा रहे भाजपा और संघ

विज्ञान की तरक़्क़ी पर बात करें तो इसकी हालत इसी बात से समझी जा सकती है कि सरकार में मौजूद लोगों ने विज्ञान की बखिया उधेड़ते हुए दर्जनों बयान सार्वजनिक तौर पर दिये हैं। यह अलग से बताने की ज़रूरत नहीं है कि इसमें हमारे देश के माननीय प्रधानमंत्री अव्वल स्थान पर हैं! नीचे प्रधानमंत्री जी के कुछ ऐसे ही बयान दिये गये हैं:

• 2014 में नरेंद्र मोदी ने गणेश जी के हाथी के सिर का हवाला देते हुए कहा कि प्लास्टिक सर्जरी तो प्राचीन भारत में मौजूद थी!

• मोदी ने महाभारत के चरित्र कर्ण का जिक्र करते हुए कहा था कि प्राचीन भारत में जेनेटिक इंजीनियरिंग का अभ्यास किया जाता था!

• 2019 में मोदी ने जेट विमानों को रडार से बचाने का नया नुस्खा निकाल दिया और बताया कि बादल में छिपे रहने से रडार विमानों का पता नहीं लगा पायेगा! जबकि यह विज्ञान के 8वीं कक्षा का छात्र भी बता सकता है कि रडार का बादल से कोई सम्बन्ध नहीं है क्योंकि यह रेडियो वेव का इस्तेमाल करता है।

• 2018 में प्रधानमंत्री मोदी ने यह बताया कि कैसे एक "चाय वाला" गटर में पाइप डाल कर उसकी गैस से चाय पकाता था! हाल ही में ईरान पर किए

(पेज 23 पर जारी)

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ- 226016